ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 22 जून 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 22 जून 2025 से 28 जून 2025

आषाढ़ कृ. 12 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 25, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

विश्व पर्यावरण दिवस पर डीएवी, जगजीतपुर, हरिद्वार में पौधारोपण

डीएवी सेंटेनरी पब्लिक स्कूल, जगजीतपुर, हरिद्वार की एनएसएस यूनिट ने बड़े उत्साह से विश्व पर्यावरण दिवस मनाया। इस कार्यक्रम में भारत विकास परिषद् के डॉ. तरुण शर्मा, क्षेत्रीय प्रधान मुख्य अतिथि रहे। इसके अतिरिक्त इस परिषद् के अन्य पदाधिकारी उपस्थित रहे। विश्व पर्यावरण दिवस की थीम 'प्लास्टिक प्रदूषण को समाप्त करना' विषय पर अनेक प्रस्तुतियां जैसे कविता वाचन, नुक्कड़ नाटक, संवाद संगोष्ठी हुई। सर्वप्रथम हवन का आयोजन किया गया।

नुक्कड़ नाटक के माध्यम से बच्चों ने पेड़–पौधों, वन्य जीवों, जलचरों आदि की विलुप्त होती प्रजातियों को बचाने पर विशेष ध्यान दिलाया। एनएसएस स्वयंसेवकों ने अतिथियों के साथ विद्यालय प्रांगण तथा विद्यालय परिसर के आस–पास सफाई अभियान चलाया तदुपरान्त फलदार पौधों का रोपण किया गया।

डॉ. तरुण शर्मा ने सभी विद्यार्थियों का उत्साहवर्धन करते हुए कहा कि इन्हीं छोटे–छोटे प्रयासों से हम अवश्य ही अपने लक्ष्य को पा सकेंगे। यदि बिना रुके हम अपने प्रयास जारी रखेंगे तो एक दिन हमारी धरती फिर से हरी–भरी तथा प्रदूषण मुक्त हो जाएगी। साथ ही उन्होंने बताया कि राष्ट्रगीत हमारी मातृभूमि की वंदना और सम्मान का प्रतीक है। श्री निखिल वर्मा ने बताया कि गेजेट्स का आविष्कार हमारे जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए हुआ है, किंतु हम इनके अनावश्यक प्रयोग से न केवल अपने स्वास्थ्य अपितु पर्यावरण से भी खेल रहे हैं।

अतिथियों ने बच्चों का उत्साहवर्धन किया, विद्यालय प्रधानाचार्य तथा उपस्थित शिक्षकगणों की प्रशंसा करते हुए भविष्य में इस प्रकार के कार्यक्रमों का जारी रखने की आशा जताई।

डी.ए.वी. वेलचेरी में नए सत्र में यज्ञ

डीएवी पब्लिक स्कूल वेलचेरी में नए सत्र की शुरुआत पवित्रता और उत्साह के साथ हुई। विद्यालय ने हवन पूजन का आयोजन किया, जिसमें बारहवीं कक्षा के विद्यार्थीवृंद, शिक्षकगण और प्रधानाचार्या सभी उत्साहपूर्वक शामिल हुए।

हवन का आयोजन शैक्षिक सत्र की शुद्ध और निर्मल शुरुआत और विद्यार्थियों में विद्यालय की परंपरा और उत्कृष्टता की भावना को प्रेरित करने के लिए किया गया। श्रीमती हेमा सारडा ने प्रधानाचार्या जी से पूरा हवन संपन्न करवाया। आध्यात्मिक ऊर्जा ने हवन में उपस्थित सभी विद्यार्थियों और शिक्षकगणों में एक नई शक्ति का संचार किया।

संगीत विभाग के शिक्षक द्वारा भावपूर्ण यज्ञ गीत प्रस्तुत किया गया, जिसके बाद विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती सुजाता का प्रेरणादायक संबोधन हुआ। प्रधानाचार्या ने छात्र.छात्राओं को नए शैक्षणिक वर्ष की शुभ शुरुआत के लिए बधाई दी और उन्हें सभी परीक्षाओं में उत्कृष्ट अंक प्राप्त करने की शुभकामनाएँ दीं।

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग ने लोगों को किया जागरूक

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग के एनसीसी कैडेट्स ने अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए दिल्ली के प्रतिष्ठित भारत दर्शन पार्क में विभिन्न योगासनों द्वारा बहुत सुन्दर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस वर्ष के अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के प्रतीक चिह्न के बारे में जागरूकता फैलाने की पहल भी की। प्रतीक चिह्न के गूढ़ अर्थ और इसके द्वारा दर्शाए गए मूल्यों – **एकता, स्वास्थ्य और वैश्विक सद्भाव** को साझा किया गया। यह प्रयास अत्यन्त सफल रहा

इस कार्यक्रम ने उपस्थित लोगों बहुत प्रभावित किया।

एनसीसी कैडेट्स ने आकर्षक योगासन करते हुए वहाँ उपस्थित लोगों के समक्ष योग की शक्ति का प्रदर्शन किया। इसके माध्यम से उन्होंने तथा विभिन्न स्थानों से आए हुए लोगों ने उनके इस प्रयास की प्रशंसा की एवं अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस में भाग लेकर जीवन में योग को अपनाने के लिए संकल्प लिया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{**संपादक – पूनम सूरी**}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 22 जून 2025 से 28 जून 2025

हे सोम! हृदय–कलश में प्रवेश करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पवस्य सोम देववीतये वृषा, इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश।
पुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय, क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते।।

ऋग् ९.७०.९

ऋषिः **रेणुः वैश्वामित्रः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **जगती**।

● **(सोम)** हे सोम परमात्मन्! **(तू)**, **(वृषा)** वर्षक **(होता हुआ)**, **(देववीतये)** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए, **(पवस्य)** प्रवाहित हो, **(इन्द्रस्य)** आत्मा के, **(हार्दि)** हृदय–रूप, **(सोमधानं)** सोम–कलश में, **(आविश)** प्रविष्ट हो।, **(बाधात्)** बाधे जाने से, **(पुरा)** पहले, **(नः)** हमें, **(दुरिता अति)** पापचरणों से लंघाकर, **(पारय)** पार करदे। **(क्षेत्रवित्)** मार्ग का ज्ञाता, **(विपृच्छते)** विशेषरूप से पूछनेवाले के लिए, **(दिशः)** दिशाओं को, **(आह हि)** बताता ही है।

● हे रसागर सोम परमात्मन्! तुम 'वृषा' हो, रस की वर्षा करनेवाले हो। तुम दिव्य गुणों के रस के साथ मेरे अन्दर प्रवाहित होवो। तुम आत्मा के हृदय–रूप सोम–कलश में आकर प्रविष्ट होवो। मेरा आत्मा न जाने कब से सोम–पान के लिए उत्कंठित हो रहा है, उस प्यासे की तृषा को दूर करो। तुम कामवर्षी हो, मेरी कामना को पूर्ण करो। तुम आनन्दवर्षी हो, मुझपर आनन्द की वर्षा करो।

कभी–कभी मेरा आत्मा 'दुरितों' से घिर जाता है। पाप–भावनाएँ उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। पाप–कर्म उसे निगलने के लिए तैयार रहते हैं। आसपास का पापमय वातावरण उसे पाप–मार्ग पर चलने के लिए प्रलोभित करता है। ऐसे समय में हे मेरे सोम प्रभु! क्या तुम खड़े देखते ही रहोगे? क्या तुम मुझे 'दुरितों' से ग्रसा जाने दोगे? क्या तुम मुझे पाप–ताप के प्रहारों से छलनी हो जाने दोगे? क्या तुम मुझे दुराचार–रूप शत्रुओं से आक्रान्त हो जाने दोगे? नहीं, तुम मेरे उद्धारक होकर आओ। इससे पहले कि 'दुरित' मेरे आत्मा पर प्रभुत्व पायें, उसे पतनोन्मुख करें, तुम त्वरित गति से मेरे पास आ जाओ और मुझे उन दुरितों से लंघाकर पार कर दो। संसार का यह नियम है कि जो 'क्षेत्रवित्' है, मार्ग का ज्ञाता है, वह पूछनेवाले को दिशा बताता ही है। तुमसे बढ़कर 'क्षेत्रवित्' बढ़कर मार्गज्ञ अन्य कौन है! अतः हे मेरे सोम प्रभु! मैं तो तुम्हीं से दिशा पूछता हूँ। मैं दिग्भ्रान्त हो रहा हूँ, तुम कुतुबनुमा यन्त्र की सुई बनकर मुझे दिशा दर्शाओ। यदि तुमसे दिशा–ज्ञान न मिला, तो मेरा जीवन–पोत भव–सागर में डूबकर नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगा। हे प्रभु! मुझ भूले को सही राह दिखाओ, मुझ भटके को गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँचाओ।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

'तत्त्वज्ञान का दूसरा साधन है वैराग्य। ऐसा कहकर स्वामी जी ने वैराग्य का स्वरूप स्पष्ट किया। सांसारिक वस्तुओं का त्याग नहीं, वैराग्य है मन लोक–परलोक हर प्रकार के फल की तृष्णा को निकाल देना। यह सारे मनुष्यों के बस की बात नहीं। इतनी बात कहकर स्वामी जी ने त्याग और तप की चर्चा आरम्भ की।

स्वामी जी ने कहा त्याग और तप यह दोनों वैदिक संस्कृति का आधार हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चारों आश्रम भी त्याग और तप पर ही चलते हैं।

वैदिक संस्कृति में यज्ञों का विधान भी त्याग और वैराग्य के प्रयोजन से है। दैनिक हवन–यज्ञ का विधान करते हुए ऋषियों ने पवित्र कर्म करने और कर्म फल से अलिप्त रहने की मर्यादा रखी। बार–बार **'इदमग्नये इदं न मम'** कहकर वैराग्य की भावना दृढ़तर होती जाती है। **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** में महर्षि दयानन्द द्वारा की गई यजुर्वेद के 18.29 मंत्र की व्याख्या के अपनी बात को पुष्ट किया। जीवन को यज्ञरूप बनाकर फल प्रभु पर छोड़ दें इसका फल अत्यन्त मीठा होता है।

महर्षि द्वारा योगी और अयोगी, वैरागी और रागी का भेद बताने के लिए स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का सहारा लिया।

मनुष्य उपासक अथवा योगी बाहरी चिह्नों से नहीं बनता। महात्मा हंसराज के जीवन का उल्लेख कर इस बात को प्रमाणित किया और कहा वैराग्य, त्याग, संन्यास ये सब हृदय की वस्तु हैं।

संन्यास का अर्थ है सर्व–त्याग। 'हठयोग प्रदीपिका' तथा 'अंगिरः स्मृति' से उद्धरण देकर इस बात की पुष्टि की।

'वैराग्य है क्या ?' इसे समझाने के लिए स्वामी जी ने 'विवेकचूड़ामणि', 'सत्यार्थप्रकाश' के पंचम उल्लास तथा कठोपनिषद् वल्ली 2.23, यजर्वेद ब्राह्मण और मनुस्मृति के प्रमाण दिए।

..... **अब आगे**

अनुभव की बात

यह अटल सत्य है जो ऋषि द्वारा प्रकट किया गया है। संसार के सारे सम्बन्ध, सारे बन्धन तोड़कर एकतत्त्व ब्रह्म की तलाश में जब तक साधक नहीं निकलता, तब तक उसका राग कहीं–न–कहीं बना ही रहता है और पूर्ण वैराग्य प्राप्त नहीं होता। अनुभव की बात यह है कि जब सारे ठिकाने, सारे आश्रय, सारी जंजीरें तोड़कर वैराग्यवान् साधक निर्जन वन में जा बैठता है तो उस समय उसके मन तथा चित्त की जो अवस्था होती है, उसे घर में बैठा हुआ तपस्वी अनुभव ही नहीं कर पाता। भगवान् के अतिरिक्त अब इस साधक को अपना कोई सहारा दृष्टिगोचर नहीं होता। उस समय संसारी पदार्थों की असारता को वह प्रत्यक्ष देखता है और तीव्र वैराग्य के सागर में तैरने लगता है। यह अवस्था संन्यासी वैरागी के भाग्य में होती है, अन्य किसी के भाग्य में नहीं।

आधुनिक काल में आश्रमों की सुन्दर प्रथा को जीवित रखने के लिए महात्मा मुन्शीराम जी ने श्री श्रद्धानन्द का और श्री नारायण– प्रसाद जी ने महात्मा नारायण स्वामी का रूप धारण करके जो पथ– प्रदर्शन किया वह अनुकरणीय है।

वैराग्य की भूमि दृढ़ ही तब होती है जब विषयों से साधक उपराम हो जाता है। भागवत स्कन्ध 11 में यह कहा है :

गुणेषु असङ्गो वैराग्यम्।।

19.27 ।।

'विषयों में अनासक्ति वैराग्य है।' इस अनासक्ति का प्रयोजन यही है कि–स्थूल, सूक्ष्म और कारण, तीनों शरीरों में विषयों की भावना का लेश किंचिन्मात्र भी न रहे। वैराग्य उत्पन्न करने का, मन को वास्तविक वैरागी बनाने का साधन क्या है ?

'पंचदशी' के चित्र–दीप प्रकरण में लिखा है :

दोषदृष्टिर्जिहासा च पुनर्भोगेष्वदीनता।
असाधारणहेत्वाद्या वैराग्यस्य त्रयोऽप्यमी।।

278 ।।

'विषयों में दोषदृष्टि वैराग्य का मुख्य कारण होती है। विषयों को छोड़ने की अभिलाषा वैराग्य का स्वरूप कहलाता है। भोगों के प्रति दीनता न रहना वैराग्य का फल माना जाता है।'

मनु भगवान् ने भी **'यथा भावेन**

भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः' अर्थात् विषय के दोषों के ज्ञान से सम्पूर्ण पदार्थों में 'निःस्पृह' हो जाना ही वैराग्य का मुक्त हेतु बतलाया है और ब्रह्म में स्थिति हो जाने का साधन यही बतलाया है :

अनेनविधिनासर्वांस्त्यक्त्वासंगान्शनैःशनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते।।

'इस प्रकार सम्पूर्ण ममता धीरे–धीरे छोड़कर सम्पूर्ण द्वन्द्वों से छूटा हुआ ब्रह्म में ही स्थित हो जाता है।' अनुभवी ऋषियों और शास्त्रकारों का यह कथन है भी यथार्थ। जीवन नैया का लंगर जब विषयों के दृढ़ कीले के साथ बँधा है, आप तब लाख ज्ञानयोग के चप्पू लगाते रहें, सब व्यर्थ है। खूँटे से पृथक् कर लो, त्याग करो, वैराग्य लाओ, तब नैया चल सकेगी।

(3) षट् सम्पत्ति

तीसरा साधन तत्त्वज्ञानी बनने का जो बतलाया गया है वह 'शम दमादि षट् सम्पत्ति' है।

ये छः साधन इस प्रकार के हैं जिनका सम्पादन अनिवार्य है। प्रभु के दरबार में उपस्थित होने के लिए कुछ सम्पत्ति भी पल्ले चाहिए। कंगले, खाली हाथ, दरिद्रों का वहाँ प्रवेश नहीं हो सकता। क्या भगवान् के दरबार में भी पूँजीपतियों ही को जाने का अधिकार है ? हाँ, वहाँ बिना सम्पत्ति के जाना वर्जित है; परन्तु वह सम्पत्ति सोने–चाँदी की ठीकरियों की नहीं, दूसरी प्रकार की धन–दौलत, ज़मीन तथा राज्य–वैभव की भी नहीं, अपितु इनको तो वहाँ कोई पूछता ही नहीं, इनका तो वहाँ कौड़ी भी मूल्य नहीं। हाँ, एक सम्पत्ति वहाँ अवश्य देखी जाती है और वह है – षट् सम्पत्ति– (1) शम, (2) दम, (3) उपरति, (4) तितिक्षा, (5) श्रद्धा और (6) समाधान का धन।

शम क्या है ?

मन का निग्रह = अपने अन्तःकरण को पाप की ओर न जाने देना। जाने लगे तो तत्काल रोकना, हर समय सावधान रहकर मन को मन ही के द्वारा अधर्म से हटाकर धर्म में लगा देना। इस मनोनिग्रह के सम्बन्ध में पहले अध्यायों में लिखा जा चुका है, अतएव यहाँ विस्तार की आवश्यकता नहीं है; परन्तु यह कहना अनिवार्य है कि संसार का सारा खेल इसी मन से है। मन वश में हुआ तो सारा संसार वश में हुआ जानो। शंकर भगवान् का यह आदेश हृदय–पटल पर लिख रखो –**'जितं जगत् केन ? मनो हि येन।'** – 'जगत् को किसने जीता ? जिसने मन को जीत लिया।' बस, शम यही है।

दम क्या है ?

हमारी जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, ये जब बाहर के विषयों की ओर जाती हैं तो पता नहीं क्या–क्या उपद्रव करने पर तैयार कर देती हैं। इन नेत्र, श्रोत्र, नासिका इत्यादि इन्द्रियों की प्रेरणा से मेरी जिह्वा, मेरे हाथ, मेरे पाँव इत्यादि जब बुरे कर्मों की ओर जाने लगें तो उन्हें तत्काल रोक देना दम कहलाता है। भगवान् ने ये हाथ शुभ कर्म के लिए दिए हैं। किसी दुखिया की सेवा, किसी गिरे हुए को उठाना, किसी को भोजन, किसी को जल, किसी को दान देना, किसी को सन्मार्ग दिखाना; इसी प्रकार पाँवों को कुसंगत, गन्दे तमाशों में, चोरी–डाका में जाने से रोककर सत्संग, सेवा, सहायता में ले जाना; मेरी आँख किसी की ओर कुदृष्टि से न देखे, मेरी जिह्वा कड़वा न बोले, असत्य न बोले, निन्दा की बात न करे, किसी बुरे व्यसन में मेरी कोई इन्द्रिय न फँसे।

इन्द्रियों का दमन करके जीवन को मधुमय बनाने के लिए अथर्ववेद की यह मीठी बात सुनो :

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधु सदशः।।
1.34.3

'मेरा चाल–चलन मोठा हो, मेरा दूर होना मीठा हो, मैं वाणी से मीठा बोलूँ जिससे मैं मधुरता की मूर्ति बनूँ।' मेरी बाह्य तथा अन्दर की सारी इन्द्रियाँ मधुमय बन जाएँ, तभी 'दम' का भाव पूर्ण हो पाएगा।

उपरति क्या है ?

श्री शंकराचार्य जी ने इसके सम्बन्ध में यह कहा है कि 'अपने कर्त्तव्य का पालन करना उपरति है।' स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है – 'दुष्ट कर्म करनेवाले पुरुषों से सदा दूर रहना उपरति है। मुक्ति चाहनेवाला, अपने कर्त्तव्य आत्म–दर्शन का पालन तभी कर सकता है जब वह बुरे लोगों की संगति से दूर रहे।' अतः इन दोनों तत्त्वदर्शियों के कथन में कोई भेद नज़र नहीं आता। दुराचारियों, पापकर्म करने वालों से यदि बचा नहीं जाएगा तो आत्म–तत्त्व की ओर जाना कठिन हो जाएगा। ऐसी कुसंगति छोड़नी ही पड़ेगी। यही नहीं, अपितु इन्द्रियों द्वारा बाह्य विकारों को भी अपने अन्दर स्थान नहीं देना होगा। केवल स्थूलरूप से ही नहीं, सूक्ष्मरूप से भी बाहर के विषयों से अपने–आपको सर्वथा पृथक् कर लेना होना। अंग्रेज़ी में इस अवस्था को Self-alienation कहते हैं।

तितिक्षा क्या है ?

द्वन्द्व सहन करना; **{Endurance = कठिनाइयों को सहन करना, आपत्तियों से घबरा न जाना, विघ्नों को परे हटाना}** गर्मी, सर्दी, इन दोनों को सहन करना तो शरीर की तितिक्षा है और निन्दा, अपमानादि सहना मानसिक तितिक्षा है। कई बार ऐसा देखा गया है कि किसी व्यक्ति में सत्त्वगुण उभरा और उसने सब कुछ त्यागकर आत्मदर्शन का मार्ग अपनाया तो कितने ही लोग यह कहते सुने गए–'पागल हो गया है यह !'

कोई कहने लगा– 'कायर है, रणक्षेत्र से भाग गया है।' किसी ने यह आवाज़ कसी कि 'पार्टियाँ लेने, जुलूस निकलवाने और पूजा करवाने का शौक चढ़ा है !' जितने मुँह उतनी ही बातें सुनाई देने लगती हैं। परन्तु सच्चा साधक न निन्दा की, न स्तुति की, न मान–अपमान की, न हानि–लाभ की, किसी की भी परवाह नहीं करता। यही नहीं, अपितु दोषारोपण करनेवालों के लिए वह मन से धन्यवाद देता है और उनका उपकार मानता है; और अपने अन्दर यदि कोई त्रुटि है तो उसे दूर करता है। त्रुटि नहीं और आरोप झूठा है तो उसे पूरी प्रसन्नता से सहन

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

लन्दन क्रन्दन दे गया

लन्दन जाने के लिए, जुड़ा बृहद परिवार।
उड़ा पखेरू गिर गया, बना मृत्यु –आहार।
स्वैच्छिक जौहर जलन का होता है त्यौहार।
किन्तु अनैच्छिक दर्द का, संचित पारावार।
सब के मन में हर्ष था, रोम रोम पर पीर।
चना भुने ज्यों भाड़ में, पिंजर बन्दी कीर।
भक से सब कुछ जल गया, काम न आई सीख।
भीख न प्राणों की मिली, निकल न पाई चीख।
औचक भौंचक चाणचक, हुआ अचानक कांड।
नभ से कोई दे गिरा, भू पर ज्यों मृदभांड।
वज्रपात ऐसा हुआ,जला नयन का नीर।
चींटी पर गिर जाय ज्यों, ज्वलित गलित शहतीर।
अग्निदेव के क्रोध ने, लिया सभी कुछ लील।
वायुयान में सब जले, जैसे जलती खील।
सब कुछ ही तो जल गया,बचा दर्द बस दर्द।
काम न कोई आ सके मर्द फर्द हमदर्द।
पाप पुण्य शुभ लाभ भी, ऋद्धि सिद्धि के साथ।
हाथ उठें इस से प्रथम, जले सभी के हाथ।
शब्दों में बँधना कठिन, सभी वर्णनातीत।
पल भर में स्वाहा हुए, गीत गजल संगीत।
बाहर धूप दबाव थे, अन्दर अकड़न ताव।
नीचे नीचे चाव थे,ऊपर ऊपर घाव।
पहले सब सामान्य थे, राग रंग सामान।
अब सब हुए अमान्य थे, लुटे पिटे सम्मान।
शिव था तो कलरव रहा, चहल–पहल रस रंग।
शिव विहीन अब शव पड़े,क्षत विक्षत दिव्यांग।
इतनी सी है जिन्दगी, इतनी सी है बात।
डोली कब अर्थी बने, शिव शव की बारात।
यत्र तत्र बिखरे पड़े, प्रेम प्रसाद विषाद।
बहुत कठिन है झेलना, उत्सव का अवसाद।
खींचे भींचे मृत्यु ने, जब जब तीर कमान।
पल भर में गायब हुई, हँसी खुशी मुस्कान।
जोड़ जोड़ निखरा निखर, तेल खेल अभ्यंग।
बिखर बिखर बिखरा बिखर, देख दुखी सब दंग।
इधर खड़ी शुभकामना, उधर प्रतीक्षा मौन।
लन्दन क्रन्दन हो गया, वृत्त बतायें कौन।
टिकट निकट जीवन विकट, लिपट चिपट वक्षस्थ।
क्षण में जीवन शव हुआ, देश हुआ अस्वस्थ।
दवा नहीं इस दर्द की, खर्चो अरब करोड़।
सीधी कभी न हो सके, मन में पड़ी मरोड़।
बहुत हुआ जो भी हुआ, क्षमा करो हे नाथ।
अपना क्रोध समेट कर, रखना सिर पर हाथ।

प्रोफेसर डॉ सारस्वत मोहन मनीषी
ए–13–14 सेक्टर–11, रोहिणी दिल्ली – 110085
फोन नं.– 011–27572897

गतांक से आगे...

आध्यात्मिक दर्शन और योग

● स्मृति शेष श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

{वैदिक जी के अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद कुछ लेखों की हस्तलिखित प्रतियाँ उनके सुयोग्य पुत्र ने हमें भेजी थीं। उन्हीं में से यह लेख पाठकों के लिए प्रस्तुत है!}

सांख्य दर्शन में भी आया हैः– **"समाधि, सुषुप्ति, मोक्षेषु ब्रह्म रूपता"** (सां. द. 5/116) अर्थात् समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति तीनों अवस्थाएँ एक सी हैं (पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम.ए. 'जीवात्मा' पुस्तक में लिखे हैं कि) उनमें जीव को ब्रह्मरूपता प्राप्त हो जाती है। अर्थात् दुःखों से छूटकर आनन्द मिलने लगता है। परन्तु यह तीनों अवस्थाएँ एक नहीं, केवल एक सी हैं। जब बाहर सूर्य निकलता है तो–कमरे के भीतरी कोने का अन्धकार भी कुछ न कुछ दूर होता ही है। परन्तु उस प्रकार से सूर्य के मुख्य प्रकाश का पता तो नहीं चला सकते। परन्तु मनुष्य का औत्सूक्य वहाँ भी पहुँच जाता है जहाँ मनुष्यों स्वयं नहीं पहुँच सकता। इसलिए मुक्ति की बात चाहे कितनी ही अज्ञेय क्यों न हो, मनुष्य में उनके विषय में वादानुवाद करना स्वाभाविक ही है। तात्पर्य यह कि समाधि में सुषुप्ति जैसा (आनन्द) और मोक्ष हो जाने पर ब्रह्मानन्द प्राप्त होने लगता है।

उपर्युक्त शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि केवल आत्मपुरुषार्थ = साक्षात्कार ही अंतिम साधना नहीं है, और न वह परिमाणी विभु हैं।

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा" (प. यो. द. सू. 23) अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है। जिस प्रकार भस्त्रिका, 'अनुलोम–विलोम' और भ्रामरी प्राणायाम से रोगों की निवृत्ति होती है, उसी प्रकार ईश्वर के प्रति भक्ति विशेष और अपने कर्मफलों को उसके प्रति समर्पण करने, उसके गुणों तथा स्वरूप का चिन्तन करने से, उसके अनुग्रह से शीघ्रतम समाधि–लाभ होता है।

'क्लेशकर्मविपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।' (प.यो.द. 24) अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध, अन्य पुरुषों (आत्माओं) से विशेष (विभिन्न उत्कृष्ट) चेतन; ईश्वर है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि यदि पतंजलि का योगशास्त्र अनीश्वरवादी होता, तो यह सूत्र देखने को न मिलता। अगले सूत्र में ईश्वर की सर्वज्ञता अनुमान–प्रमाण द्वारा सिद्ध करते हैं–

'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।।' (प. यो. द. सू 25) तत्र उस सर्वोक्त ईश्वर में, **निरतिशयम्** = अतिशय रहित; **सर्वज्ञबीजम्** = सर्वज्ञता का बीज है। अर्थात्–जिस ज्ञान के बराबर अथवा अधिक ज्ञान हो, उसको सासतिशय ज्ञान, और जिसके बराबर अथवा अधिक ज्ञान न हो अर्थात् जो काष्ठा को प्राप्त हो जाए, उसको निरतिशयज्ञान कहते हैं।

"तस्य वाचकः प्रणवः" (प.यो.द. 27) उस ईश्वर का बोधक शब्द 'ओ३म्' है, प्रतिमा अर्थात् किसी की मूर्ति नहीं। यह ईश्वर और 'ओ३म्' का वाच्य–वाचक सम्बन्ध नित्य है। **"प्रणवो धनुः शरोह्यमात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्मुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।"** (मु. 218) प्रणव (ओ३म्) धनुष है। आत्मा बाण है। ब्रह्म लक्ष्य कहा गया है। सावधानी से उसे बींधना चाहिए। अर्थात् बाण के सदृश अभ्यासी अपने लक्ष्य ब्रह्म में तन्मय हो जाए। **"तज्जपस्तदर्थ भावनम्"** (प.यो.द. 28) उस 'ओ३म्' शब्द का जप (अनुलोम–विलोम, प्राणायाम के साथ) और उसके अर्थ भूत ईश्वर का ध्यान करना (पुनः पुनः चिन्तन करना) ईश्वर प्रणिधान है– (प्राणायाम के बाद, ध्यान में एकता बने रहने पर जब योगी ओम् ध्वनि को सुनना चाहता है, तब उसे अन्तर प्रणव की ध्वनि सुनाई देने लगती है और वह प्रसन्नता अनुभव करने लगता है।) **जो व्यक्ति यह समझते हैं कि यह शब्द, अक्षर साकार मूर्त्त ही तो है, वे योग दर्शन के सूत्रों का अनर्थ करते हैं।** ऋषि ने यह नहीं कहा है कि उस ओ३म् को प्रतीक समझकर उसका **"भवनम्"** अर्थ ज्ञान न करके उसकी प्रतिमा बनाई जाए। लिखने वाला जड़ पृष्ट पर 'ओ३म्' अथवा मन्त्रों का शब्द अक्षर, कोई चेतन ज्ञानी ही होता है, और उसे समझाने वाला कोई चेतन गुरु ही होता है, इसलिए जो गुरुओं का गुरु ईश्वर है वही पूजनीय है। वैसे तो माता, पिता, आचार्य, पत्नी, पुत्रवधु, बहिन सब साकार प्रतीक हैं, तो क्या उन सबका अर्थ भी एक ही है ?

(एक पंडित श्रीगणेश पूजन करने, किसी के घर गए, उन्होंने कहा 'गणपति' की मूर्ति ले आइए। यजमान ने कहा, मूर्ति तो नहीं है। पंडित बोले एक सोपाड़ी तो है ? यजमान ने सोपाड़ी लाकर दे दी। पण्डित जी बोले इस सोपाड़ी को ही 'गणपति' मानो। यजमान ने कहा अरे यह तो खाने की सोपाड़ी है, इसे गणपति क्यों मानें ? पण्डित जी बोले, इसे ही 'गणपति' मानो। तो क्या हम वही मान लें ?

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्रादि सब स्थूल और सूक्ष्म रूप में साकार हैं किन्तु वे सब सृष्टि के कार्य–कारण हैं। सत्, रज, तम, ये तीनों प्रकृति के गुण हैं और वे सभी प्राकृतिक सृष्टियों में पाए जाते हैं, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय उन्हीं शक्तियों के द्वारा होती है, किन्तु प्रलय में उन सभी परमाणुओं के गुण सर्वदा विद्यमान रहते हैं तभी उनके द्वारा सृष्टियों की पुनः उत्पत्ति स्थिति आदि होते रहते हैं। परन्तु कोई भी एक परमाणु विभिन्न सृष्टियों की उत्पत्ति नहीं कर सकता जैसे केवल निगेटिव कण से बिजली उत्पन्न नहीं हो सकती जब तक 'पोजेटिव' कण का योग नहीं होता। इसी प्रकार यदि सत् किरण का प्रकाश न हो तो कुछ नहीं बन सकता। अतः ईश्वरीय सृष्टियों, अदृश्य और दृश्य रूप में जहाँ जैसी क्रियाएँ हो रही हैं, उन शक्तियों को उन्हीं नामों से पुकारा जाता है" यथा–**'एकं सद्दि प्रा बहुधा वदन्ति'** सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर एक ही है, किन्तु उन्हीं के द्वारा, उपादान कारण प्रकृति बहुरूप धारण करने और उनमें जहाँ जैसी क्रियाएँ हो रही हैं उस ईश्वर को जिसका अर्थ है 'ईशनशील' अर्थात् इच्छा मात्र से सम्पूर्ण जगत् के उद्धार करने में समर्थ। अतः उस सर्वशक्तिमान् एकेश्वर को अनेक नामों से पुकारा जाता है।

उदाहरण के लिए–जैसे एक मनुष्य को रिश्ते में उसे कई नामों से पुकारा जाता है, किन्तु उसका मुख्य नाम ओंकार नाथ है। रिश्ते में उसके उपनाम सगुण सृष्टियों के अनेक नाम हैं, किन्तु उसे बुलाने के लिए, उसे मुख्य नाम से बुलाना होगा। उसका मुख्य नाम 'ओ३म्' है उसके अर्थज्ञान ऐसे हैं कि उसकी काल्पनिक मूर्तियाँ नहीं बन सकती। इसलिए विद्वान् मनुष्य उस अन्तर्यामी, अनन्त सर्वशक्तिमान् ईश्वर को 'ओ३म्' नाम से पुकारते हैं। इसके अलावा जो जिस जाति धर्म के होते हैं वे अपनी–अपनी भाषा में उस महान् प्रभु को किसी न किसी नाम से अवश्य पुकारते हैं। ईश्वर में महान् गुण है, इसलिए ऋषियों ने उसे ओ३म् नाम से पुकारा है। यह हृदय की अन्तर ध्वनि है जिसे योगियों ने जाना और समझा है, वही प्रणव ओ३म् है, जिसके नाम से परमात्मा के अन्य नामों का भी बोध हो जाता है।

यदि कोई कहे कि सृष्टियों को देखकर भी परमात्मा का ज्ञान हो जाता है, फिर 'ओ३म्' शब्द को साकार रूप में क्यों लिखा जाता है ? इसका भी समाधान है–जिसके द्वारा प्राकृतिक सृष्टियों की रचना हुई है और जिसके द्वारा बुद्धिपूर्वक शरीरधारियों की रचना होती है। उस ईश्वर, प्रकृति और आत्मा का ज्ञान तो अनन्त है, फिर भी जो जहाँ तक जानते हैं वहीं तक उन सबकी रचनाओं का वर्णन करते हैं। जैसे केवल शरीर विज्ञान पढ़ लेने से कोई डॉक्टर नहीं होता **'मेडिकल'** को **'प्रेक्टिकल'** अर्थात् प्रयोग में सफल होने के बाद ही कोई डॉक्टर बनता है। वैसे ही गाय दोहन का ज्ञान कर लेना पर्याप्त नहीं है, उस ज्ञान की पूर्णता तब होती है, जब दूध को दुहने की क्रिया की जाती है। इसी प्रकार ईश्वरानन्द की प्राप्ति, केवल ज्ञान कर लेने से नहीं होती, उसकी प्राप्ति ज्ञान, कर्मोपासना, योगसाधना से होती है। वैसे ईश्वर तो सबको प्राप्त है, किन्तु उसका आनन्द जीव को अप्राप्त है, उसी की प्राप्ति के लिए योगाभ्यास किया जाता है और केवल आत्म–साक्षात्कार ही अंतिम साधना नहीं है, उससे और आगे बढ़ने पर ही आनन्द की प्राप्ति होती है।

ज्ञानी तो आप भी हैं और वैज्ञानिकों को तो (कणाद मुनि का **वैशेषिक दर्शन परमाणुवाद** और कपिल मुनि का साख्य दर्शन में **'प्रकृति–वाद'** आज उन लोगों से अधिक जानकारी प्राप्त हो गई है, किन्तु उन्हें भी इन भौतिक रहस्यमय सृष्टियों को देखकर यह ज्ञान हो गया है कि, कोई ऐसी महान् अनन्त अदृश्य शक्ति है जो हम लोगों के मस्तिष्क से परे की है। वही प्रणव है, वही प्राण से भी प्रिय है, उसे ही जो प्रेम से मन को बुद्धि से, और बुद्धि से, चित्त को एक ध्यान से अपने में स्थिर करता है उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है।

'तदेवार्थमात्र निर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधिः' (प.यो.द. सू. 3)

अन्वयार्थ– वह ध्यान ही समाधि कहलाता है, जब उसमें केवल ध्येय अर्थमात्र से भासता है और उसका (ध्यान का) स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है।

'अर्थमात्रनिर्भासं' में 'मात्र' पद से यह बात बतलाई है कि ध्यान में ध्येय का भान होता है, ध्येय मात्र का नहीं। किन्तु समाधि में ध्यान ध्येयमात्र से भासता है और इस शंका के मिटाने लिए कि ध्यान

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

पाखण्ड और अन्धविश्वास की शास्त्री अवधारणाओं का उन्मूलन

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

स्वतः प्रमाण, आर्ष और अनार्ष ग्रन्थ :–

साधारण हिन्दू जनता ही नहीं सुशिक्षित हिन्दू समाज पर संस्कृत में लिखे किसी भी श्लोक के प्रति पूज्यबुद्धि का भाव है। मध्यकाल में स्वार्थी पण्डितों ने **ऋषियों के नाम से जाल ग्रन्थों** की रचना की है (अपना नाम इसलिए नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे तो कोई प्रमाण नहीं करेगा। इसलिए व्यास आदि ऋषि, मुनियों के नाम धर के पुराण बनाए – **सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास**) और उसे धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के रूप में मान्यता दे दी है। इसी कारण महाभारत के पश्चात् हिन्दू–समाज का पतन और पराभव हुआ। उसे राजनैतिक पराधीनता की दासता और यन्त्रणा भी भुगतनी पड़ी। 19वीं शताब्दि में महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। वेदादि सत्यशास्त्रों, आर्ष तथा अनार्ष ग्रन्थों के गम्भीर आलोडन, प्रबल वैराग्य, अखण्ड तप, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की साधना और अष्टांग योगाभ्यास से ऋषि दयानन्द की आर्ष–प्रतिभा प्रकटित हुई और उन्होंने यह उद्घोष किया कि **'सत्याऽसत्य'** की परीक्षा **पाँच प्रकार** से होती है –

1. जो–जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह–वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है।
2. जो–जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह–वह सत्य है और जो–जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह – वह असत्य है। जैसे कोई कहे कि बिना माता–पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ, ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।
3. आप्त अर्थात् जो धार्मिक विद्वान् सत्यवादी निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह वह ग्राह्य और जो–जो विरुद्ध है वह–वह अग्राह्य है।
4. अपनी आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुखप्रिय और दुःख अप्रिय है, वैसे की सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख व सुख दूँगा, तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।
5. आठों प्रमाण–अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव– इन प्रमाणों से **ज्ञात तथ्य सत्य** होते हैं और इन प्रमाणों से **असिद्ध असत्य** होते हैं।

इन पाँच प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्याऽसत्य का निश्चय कर सकता है अन्यथा नहीं। जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इस क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्यों कर हो सकता है ? महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण से समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मंशा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी। जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सके। जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना। ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रविद् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है, उनके बनाए हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद **ये चारों** वेद ईश्वरकृत हैं, इसलिए **स्वतः प्रमाण** हैं। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चारों ब्राह्मण–ग्रन्थ, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदांग, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त ये छः दर्शन (उपांग), आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और अर्थवेद ये चारों वेदों के चार उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनियों के रचित ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। इन परतः प्रमाण ग्रन्थों में जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस उसको छोड़ देना। क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतः प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। **ब्राह्मणादि ग्रन्थ परतः प्रमाण, अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है। मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र–ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदास कृत भाषा रामायण,** रुक्मिणीमंगलादि और सर्व भाषाग्रन्थ से सब कपोलकल्पित **मिथ्याग्रन्थ** हैं। **इन ग्रन्थों में थोड़ा सत्य तो है, परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है। जैसे विषसम्पृक्त अन्न त्याज्य होता है।** अर्थात् अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है, वैसे ये ग्रन्थ हैं। क्योंकि जो–जो उनमें सत्य है, सो–सो वेदादि–सत्यशास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि – सत्यशास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई भी इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे, तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जाए। इसलिए असत्यमिश्रित सत्य दूर से ही त्याज्य है। असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे ही छोड़ देना चाहिए, जैसे विषयुक्त अन्न को। (सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास) **ऋषि दयानन्द ने 20 जुलाई 1869 ई.** के समीप एक विज्ञापन प्रकाशित कर कानपुर में वितरित किया था। यह विज्ञापन संस्कृत भाषा में था, जिसमें 8 सत्य और 8 गप्पों का उल्लेख था। उन 8 गप्पों का विवरण इस प्रकार है– 1. मनुष्यकृत ब्रह्मवैवर्तपुराणादि ग्रन्थ। 2. देवबुद्धि से पाषाणादि का पूजन। 3. शैव शाक्त वैष्णव गाणपत्य आदि सम्प्रदाय। 4. तन्त्र ग्रन्थों में उल्लिखित वाममार्ग 5. भंग मद्यादि नशा का सेवन। 6. परस्त्री गमन। 7. चोरी (स्तेयकर्म)। 8. कपट–छल, अभिगमन तथा असत्य भाषण। इन 8 गप्पों को अपने जीवन में कोई स्थान नहीं देना चाहिए, इसके विरुद्ध 8 सत्य हैं जिनका पालन अपने जीवन में अवश्य करना चाहिए। वे 8 सत्य इस प्रकार हैं – 1. ऋग्वेदादि 21 ग्रन्थ। 2. ब्रह्मचर्याश्रम के पालन से गुरुसेवा, स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक वेदों का पढ़ना। 3. वेदोक्त–वर्णाश्रम– स्वधर्म–संध्यावंदन– अग्निहोत्र आदि का अनुष्ठान। 4. अपनी धर्मपत्नी के साथ ऋतुकाल में अभिगमन, पंच महायज्ञों का अनुष्ठान, श्रौत – स्मार्त आचारादि का अनुष्ठान। 5. शम, दम, तपश्चरण, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि इन अष्टांग योगपद्धति से उपासना तथा सत्संगपूर्वक वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान। 6. विचार, विवेक, वैराग्य, पराविद्या के अभ्यास से संन्यास ग्रहण और सर्वकर्मफल– त्यागादि का अनुष्ठान। 7. ज्ञान, विज्ञान के द्वारा सभी अनर्थों के कारणभूत जन्म–मरण–हर्ष – शोक–काम–क्रोध–लोभ–मोह के संगदोष के त्याग का अनुष्ठान। 8. अविद्या–अस्मिता– राग–द्वेष–अभिनिवेश– तमः–रजः – सत्त्व–सर्वक्लेश– निवृत्ति, पंचमहाभूतातीत मोक्ष– स्वरूप स्वराज्य की प्राप्ति ये 8 सत्य हैं, जिन्हें अपने जीवन में ग्रहण करना चाहिए। इन 8 सत्यों में प्रथम सत्य ऋग्वेदादि 21 ग्रन्थों का विवरण स्वामी जी ने इस प्रकार दिया है – 1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद, 4. अथर्ववेद। इन चार वेदों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड का निश्चय है। **संध्यावंदन से लेकर अश्वमेधपर्यन्त कर्मकाण्ड जानना चाहिए। यम से लेकर समाधि पर्यन्त पातंजल योगदर्शन निर्दिष्ट श अष्टांग मार्ग को उपासनाकाण्ड जाना चाहिए। निष्काम कर्म से लेकर परब्रह्मसाक्षात्कार पर्यन्त ज्ञानकाण्ड समझना चाहिए।** 5. आयुर्वेद – इसमें चिकित्सा विद्या है, जिसके चरक और सुश्रुत दो ग्रन्थ हैं। 6. धनुर्वेद – इसमें शस्त्रास्त्र विद्या है। 7. गांधर्ववेद – जिसमें गान विद्या है। 8. अर्थवेद, इसमें शिल्प विद्या है। ये चारों उपवेद चारों वेदों के क्रमशः जानने चाहिएँ। 9. शिक्षा (वर्णोच्चारण विधि)। 10. कल्प (वेद – मन्त्रों की अनुष्ठानविधि)। व्याकरण, जिसमें शब्दार्थ सम्बन्धों का निश्चय है। इसके दो ग्रन्थ अष्टाध्यायी और महाभाष्य सत्य जानने चाहिएँ। 12. निरुक्त, इसमें वेद मन्त्रों की निरुक्तियाँ हैं। 13. छन्द, इसमें गायत्री आदि छन्दों के लक्षण हैं। 14. ज्योतिष, इसमें गणित विद्या से ज्ञात होनेवाले भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों के तिथि–नक्षत्र–सूर्य–चन्द्र–ग्रहण आदि विषयक ज्ञान। ये छः वेदांग हैं ये ही **14 विद्याएं (4 वेद, 4 उपवेद, 6 वेदांग) कहाती हैं।** 15. ईश–केन– कठ– प्रश्न–मुण डक–माण्डूक्य– तैत्तिरीय– ऐतरेय– छान्दोग्य–बृहदारण्यक – श्वेताश्वतर – कैवल्य **12 उपनिषदें। इनमें ब्रह्मविद्या है।** 16. शारीरकसूत्र, इसमें उपनिषद् मन्त्रों का व्याख्यान है। 18. योगभाष्य, इसमें उपासना और ज्ञान के साधन वर्णित हैं। 19. वाकोवाक्य, इसमें वेदानुकूल तर्कविद्या है। 20. मनुस्मृति, इसमें वर्णाश्रम धर्मों का तथा वर्णसंकर धर्मों का व्याख्यान किया गया है। 21. महाभारत, इसमें शिष्ट और दुष्ट जनों के लक्षण प्राप्त होते हैं।

इन 21 वेदादि शास्त्रों को सत्य जानना चाहिए। इनमें से प्रथम 4 वेदों को छोड़कर शेष आर्ष–ग्रन्थ हैं इनको परतः प्रमाण मानना चाहिए। इनमें भी व्याकरण, वेद तथा शिष्टाचार के विरुद्ध जो वचन प्राप्त हों, उन्हें सत्य नहीं मानना चाहिए। इन **21 वेदादिशास्त्रों से भिन्न** जो ग्रन्थ हैं उन्हें **गप्पाष्टक** समझना चाहिए।

चाणक्यपुरी, अमेठी
उ.प्र.–227405

गतांक से आगे...

सफल जीवन

● भद्रसेन

{आचार्य भद्रसेन द्वारा लिखित यह लेख एक ट्रैक्ट के रूप में 16 पृष्ठों में छापा था। वार्तालाप शैली में लिखित यह लेख दो अंकों में पाठकों के लिए प्रस्तुत है—सम्पादक}

आर्थिक सम्पन्नता

मानवेन्द्र — यह ज़िम्मेदारी अपने, परिवार, समाज, देश के प्रति कैसे निभाई जाए का प्रश्न ही तीसरे पग को सामने ला देता है। तब आर्थिक स्वावलम्बन का इसमें विशेष योगदान रहता है। पिंगलाचार्य ने छन्दों की प्रारम्भिक परिभाषा के प्रसंग में शब्दों को जो क्रम दिया है (धी श्री — म 1,1) उससे भी यही पुष्ट होता है।

आधुनिक युग की अधिकतम अपेक्षाएँ अर्थ से ही अर्जित होती हैं। अर्थाजन किसी न किसी कारोबार से ही होता है। ऐसी स्थिति में अर्थ का अर्थ, परिभाषा, साध्य—साधन का विचार और धन कैसे, कितना उपार्जित किया जाए आदि अनेक प्रश्न क्रमशः प्रादुर्भूत होते हैं। अतः इसके लिए हाथ पैर मारना ज़रूरी हो जाता है, क्योंकि इसके बिना व्यक्ति स्वस्थ, शिक्षित, सज्जन होते हुए भी शून्य हो कर रहा जाता है। यह ठीक है कि आज अर्थ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वह सब कुछ नहीं है।

धर्मेन्द्र—मानवेन्द्र जी ! ***'दूजा सुख जिसके पल्ले माया'*** प्रकरण मैंने **'सुखी कैसे रहें?'** से पढ़ा है। पुनरपि यह सब होते हुए भी धर्म का क्या कोई कम स्थान है? मुझे तो भारत में धर्म सबसे प्रमुख प्रतीत होता है।

धार्मिक समझ

मानवेन्द्र — धर्म शब्द का अर्थ है धारण, पालन और सभी की दृष्टि से धर्म का फल है — सुख। अर्थात् उन बातों, व्यवहारों का नाम ही धर्म है, जिनके अपनाने से सुख मिलता है। जैसे कि परस्पर सही बोलने से ***'मीठे वचन तै—सुख उपजे चहुँ ओर'*** चरितार्थ होता है। ऐसे ही आपस के सम्बन्धों को सच्चाई के साथ निभाने से दोनों तरफ सुख, सन्तोष सामने आता है। तभी तो इन दोनों बातों को मनुस्मृति में **धर्म** कहा है।

साहित्य में धर्म शब्द स्वभाव, कर्मकाण्ड (= पूजा—पाठादि), विश्वास, सिद्धान्त और आचरण आदि अर्थों में आता है। पर इन में से आचरण =व्यवहार ही मुख्य है तथा इसी के लिए ही अन्य अंग हैं क्योंकि सत्य, स्नेह, भलाई, ईमानदारी आदि गुणों को अपनाने पर ही धर्म का फल—सुख, शान्ति सामने आती है।

जैसे नाव या पुल के बिना नदी को पार करना कठिन रहता है ऐसे ही जीवन नदी से तरने के लिए धर्म का महत्त्व है। धर्म का यह महत्त्व स्पष्ट होते हुए भी, आज इसको व्यापार एवं प्रदर्शन की वस्तु बना कर रख दिया गया है अतः धर्म के विविध रूपों का इतना अधिक फैलाव हो गया है, कि उसको समेटना असम्भव लगता है जबकि **धर्म की सीधी सी कसौटी है, जीवन का सच्चा—सुच्चापन,** जो कि व्यवहार की चीज है। आज धर्म के हर क्षेत्र में जानबूझ कर उलझनें बना दी गई हैं, जिससे अपनी दुकान चल सके। जैसे कि —

हर धर्म में ईश्वर का प्रथम स्थान है और सभी दुनिया को बनाने, पालने वाले के रूप में उसको मानते हैं पर सर्वत्र ईश्वर की परस्पर विरोधी इतनी आकृतियाँ, मान्यताएँ आ गई हैं, कि वे अपनी मूलभावना से ही दूर चली गई हैं। जिस ईश्वर ने हमारे लिए दुनिया के सारे पदार्थ दिए हैं, उसके प्रति कृतज्ञता (= भक्ति) प्रकट करना एक स्पष्ट बात है, पर भक्ति का आज जो फैलाव हुआ है, उससे यह क्षेत्र व्यापार को भी हर तरह से पीछे छोड़ गया है। अब इसमें न कृतज्ञता है और न ही आत्मिक बल की प्राप्ति। वस्तुतः पूजापाठ का मूलभाव तो था, सड़क के बोर्डों की तरह सीधी राह का संकेत करना, पर अब वे ही लक्ष्य बन बैठे हैं इसलिए एक जिज्ञासु धर्म को समझने का जितना प्रयास करता है, उतना ही उलटा वह उलझन में उलझा लगता है और यह स्थिति कीचड़ से निकलने के प्रयास का स्मरण करा देती है अतः **पूजापाठ का वही रूप अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है जिससे व्यक्ति सच्चे— सुच्चेपन की प्रेरणा के साथ भगवान से अपना गहरा सम्बन्ध अनुभव करे।** इतने पर ही अधिक ज्ञान की आकांक्षा हो तो 'सरलसुखी जीवन' देखें।

'परहित सरस धर्म नहीं भाई', और

'दया धर्म का मूल है।'

'जहाँ दया, तहाँ धर्म है।'

ही धर्म के सारे स्वरूप को स्वतः स्पष्ट करते हैं।

तभी तो कहा है —

यही है इबादत, यही है दीनो ईमां।
इन्सान के काम आए, इन्सां।

तथा

किसी के काम जो आए उसे इन्सान कहते हैं।
पराया दर्द जो अपनाए उसे इन्सान कहते हैं। —'पथिक'

अजय — हाँ, आप के इस धर्म विषयक विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है, कि जैसे व्यवस्था, नियम बनाए रखना ही इस का अभिप्राय हो। इस के साथ चर्चा की इस ज़ंजीर में आपस के सम्बन्धों का भी कोई स्थान है ?

सामाजिक भावना

मानवेन्द्र—हम सब विचारशील परस्परापेक्षी सामाजिक प्राणी हैं। हमारा जन्म और जीवन आपस के सम्बन्धों पर ही सर्वदा निर्भर है। आपस के सम्बन्ध परिवार, समाज, देश के साथ जहाँ जुड़े हुए हैं, वहाँ अब विश्व को भी अलग करना कठिन है। परिवार — पति—पत्नी के एक दूसरे को पूरी तरह स्वीकार करने से प्रारम्भ होता है, और अपनेपन की भावना से पनपता है। इस में माता—पिता, भाई—बहन, या पति—पत्नी, पुत्र—पुत्री जहाँ सामान्यतः आते हैं, वहाँ इन्हीं के पारस्परिक सम्बन्धों का विस्तार ही समाज के रूप को धारण करता है अर्थात् सामाजिक संगठन का एक पहलू जहाँ सभी तरह की रिश्तेदारियाँ होती हैं, वहाँ अपने आवास के समीप रहने वाले खेल, शिक्षा, कारोबार, धर्म, राजनीति आदि क्षेत्रों के परिचित, मित्र भी समाज के आवश्यक अंग हैं। इन सब का सम्बन्धों के अनुरूप स्नेह, सद्भाव, विश्वास, सहयोग ही सामाजिक संगठन का मूल आधार है।

समाज के सदस्यों की स्थिति बहुत कुछ हाथ की अंगुलियों की तरह ही है। जैसे वे आकार—प्रकार से भिन्न—भिन्न होती हुई भी, हर एक कार्य के समय तदनुरूप समस्थिति में आ जाती हैं, जैसे कि लिखने, खाने आदि के समय ये हो जाती हैं। ऐसे ही चाहे सभी मनुष्य एक—दूसरे से संस्कार, शिक्षा, क्षमता आदि से परस्पर विषम होते हैं फिर भी समाज के सभी सदस्यों को समाज के सामाजिक व्यवहार में स्थान मिलना चाहिए तभी संगठन अपने संगठन को साकार कर सकता है।

अतः—

अकेले ही जो खा—खा कर सदा गुजरान करते हैं।
यों भरने को तो दुनिया में, पशु भी पेट भरते हैं।
पथिक जो बाँट कर खाए, उसे इन्सान कहते हैं।

सामाजिक एकता के बिना जात—पात, ऊँच—नीच, वर्ण—वर्ग आदि के भेदभाव से केवल असहयोग, अविश्वास ही परस्पर नहीं उभरता, अपितु घृणा, ईर्ष्या, द्वेष का रूप प्रकट होने लगता है अतः सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना ही सामाजिकता की जड़ है। हाँ, इस से अनेक प्रश्न उभर रहे होंगे, पर संक्षेप का विस्तार तो **'सुसंगत जीवनपथ'** के **'मानवजाति की एकता'** के प्रकरण में देखा जा सकता है।

सर्वेश— इसी के साथ एक यह प्रश्न भी उभरता है कि राजनीति का जीवन में कितना, कैसा सम्बन्ध है ?

राजनैतिक सूझ—बूझ

मानवेन्द्र — किसी संगठन की सुचारुता के विधि—विधान को ही राजनीति कह सकते हैं। व्यवस्था को बनाए रखना ही इसका मूल उद्देश्य है क्योंकि हमारे सारे कार्य तभी सम्पन्न होते हैं, जब व्यवस्था बनी रहती है। एतदर्थ ही राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र प्रिय हो रहा है क्योंकि तब सभी समान भागीदार हो जाते हैं। इस स्थिति में कोई बात (कानून) थोपी हुई न होकर स्व+तन्त्र, स्व+अधीन = स्व—इच्छा से होती है। तब सहयोग प्राप्ति की भावना, स्थिति, अपेक्षा उसका स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए इसलिए सुरक्षा, स्वतन्त्रता, बन्धुता, न्याय प्रजातन्त्र के मौलिक आधार हैं।

हाँ, **देश किसी एक व्यक्ति, वर्ग का नहीं, अतः उसकी हर चर्चा, प्रसंग, स्थिति में सभी की बात होनी चाहिए। अतः राजनीति के क्षेत्र में किसी भी चर्चा को किसी वर्ग विशेष तक सीमित न किया जाए क्योंकि प्रशासन सब के सुख, सभी की भलाई के लिए ही होता है। यही इसकी जान, कसौटी है, अन्यथा उस में अधूरापन ही होगा। किसी एक की ही बात करना, देश के संकट को आमन्त्रण देना ही बन जाता है जिससे परस्पर घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, विनाश ही सामने आता है।**

प्रिय बन्धुओ ! इस प्रसंग में बहुत कुछ कहा जा सकता है तथा हर भाषा के साहित्य में इन बातों की बड़ी विस्तृत चर्चा मिलती है। मैंने तो यह विवेचन पंचतन्त्र की भावना के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है कि संसार में शब्दशास्त्र (चर्चा) का कोई आर—पार नहीं, पर उसके लिए अपेक्षित अवसर (आयु) अल्प है, उस पर भी इसमें आने वाले विघ्नों का कोई अन्त नहीं, अतः हर समझदार को चाहिए कि फोक को परे

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

साथ की महिमा

● अजय शर्मा

यह लेख पढ़ने से पहले आइए एक छोटा सा क्रियाकलाप करते हैं। एक काँच का गिलास, एक पोस्टकार्ड और एक बर्तन में थोड़ा पानी ले लीजिए। अब काँच के गिलास के ऊपर पोस्टकार्ड रखिए फिर काँच के गिलास को उल्टा कर दीजिए पोस्टकार्ड की स्थिति का अवलोकन कीजिए। पोस्टकार्ड नीचे गिर गया, क्या आप इसका कारण बता सकते हैं ? अब गिलास में पानी लीजिए, गिलास को फिर से उल्टा कर दीजिए, पानी का अवलोकन करें पानी के नीचे गिरने का कारण क्या है ? अब पहले गिलास में पानी भरिए फिर उसके ऊपर पोस्टकार्ड रखिए। अब जिस हाथ से गिलास पकड़े हैं उसके अलावा दूसरा हाथ पोस्टकार्ड के ऊपर रखकर गिलास को उलट दीजिए, अब पोस्टकार्ड के नीचे से हाथ हटा दीजिए। अब पानी और पोस्टकार्ड की स्थिति का अवलोकन कीजिए। पानी और पोस्टकार्ड दोनों ही नहीं गिरते हैं। **जल और पोस्टकार्ड का न गिरना कोई चमत्कार नहीं है बल्कि यह जल और पोस्टकार्ड के साथ आने का परिणाम है।** जब जल और पोस्टकार्ड को अलग–अलग गिलास के ऊपर रखकर गिलास को उल्टा किया गया तो जल और पोस्टकार्ड दोनों ही पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण गिर पड़ते हैं किन्तु **जब जल और पोस्टकार्ड दोनों साथ आते हैं तो यह साथ आना गुरुत्व के प्रभाव को नकारता हुआ प्रतीत होता है।** यह साथ आने का ही परिणाम है कि असंभव लगने वाली घटना भी संभव हो जाती है।

एक उदाहरण गणित से लेते हैं "क" में एक पद है। "क" में "क" का गुणा करने पर "क^2" प्राप्त होता है, इसमें भी पद की संख्या एक ही है। इसी प्रकार "ख" में एक पद है। "ख" में "ख" का गुणा करने पर "ख^2" प्राप्त होता है, "ख^2" में भी एक ही पद है। अब क और ख को साथ लेकर बने (क+ख) को (क+ख) से गुणा करने पर गुणनफल क^2 + ख^2 + 2क ख प्राप्त होता है, इसमें पदों की संख्या दो से बढ़कर तीन हो गई है। जब तक "क" व "ख" अलग–अलग लिए जाते हैं उनका वर्ग करने पर पदों की संख्या मूल पद के समान ही रहती है किन्तु जब "क" और "ख" को साथ लिया जाता है तो गुणनफल में पदों की संख्या बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि जब "क" और "ख" साथ आते हैं तो उनके गुणनफल में एक अतिरिक्त पद जुड़ जाता है।

प्रकाश के सात रंगों के साथ आने पर उसका रंग श्वेत दिखाई पड़ता है, श्वेत प्रकाश में देखने पर ही विभिन्न वस्तुओं के रंग दिखाई पड़ते हैं। किसी एक रंग के प्रकाश में दूसरे रंग की वस्तु काली दिखाई पड़ती है। यह प्रकाश के सात रंगों के साथ आने का ही प्रभाव है कि हम श्वेत प्रकाश में इस खूबसूरत प्रकृति के रंगों की विविधता देख पाते हैं वरना एक रंग के प्रकाश में दूसरा कोई रंग देख ही न पाते।

यह प्रकृति का नियम है, जहाँ भी दो या दो से अधिक घटक साथ आते हैं उनमें कुछ अतिरिक्त का योग हो जाता है। यह कुछ अतिरिक्त कभी मूर्त होता है तो कभी अमूर्त।

आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता की काफी चर्चा हो रही है। सामान्यतः अवलोकन करने की क्षमता, विश्लेषण की क्षमता तथा निष्कर्ष निकालने और बुद्धि की कल्पना, तदनुसार कार्य करने की क्षमता को बुद्धिमत्ता कहा जाता है। बुद्धि को सजीवों का गुण माना जाता है। मशीनें अव्यावहारिक प्रतीत होती हैं किन्तु आज हम ऐसी–ऐसी मशीनें उपयोग में ला रहे हैं जो न केवल अवलोकन करने में सक्षम हैं बल्कि विश्लेषण कर निष्कर्ष भी निकाल रही हैं। मशीनों की इसी क्षमता को कृत्रिम बुद्धिमत्ता कहा जाता है। मशीनों में यह क्षमता आई कैसे ? अगर गौर करें तो पाएँगे कि इन मशीनों में एक ही विषय से संबंधित अनेक सूचनाएँ संग्रहित कर दी जाती हैं, अनेक सूचनाओं की सामूहिक उपस्थिति से मशीनों में ये क्षमता आ जाती है कि वे विश्लेषण कर सटीक निर्णय ले सकें। सूचनाओं के समूह या कहें कि ढेरों सूचनाओं के साथ आने के कारण ही मशीनों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आ जाती है। बुद्धिमत्ता जो कि चेतन का गुण है, यह अचेतन में भी परिलक्षित हो रहा है, यह संभव हुआ अनेक सूचनाओं के साथ आने की वजह से। **यह साथ का ही प्रभाव है कि जड़ व चेतन के बीच विभेद सिमटता जा रहा है।**

एक सूखा बीज जो किसी बर्तन में या किसी डिब्बे में या बोरे में रखा होता है जड़ प्रतीत होता है, निर्जीव दिखाई पड़ता है। यद्यपि बीज में जीवन की संभावना होती है किन्तु उसमें जीवन दिखाई नहीं पड़ता। जब बीज, नमी, वायु और ऊष्मा साथ आते हैं तो **इन चार घटकों का साथ ही बीज को अंकुरित कराता है।** बीज, नमी, वायु और ऊष्मा इन चार घटकों के साथ आने के कारण इनसे कुछ अतिरिक्त का योग हो जाता है, जो बीज को अंकुरित करता है। यह अंकुरण बीज के सजीव होने का बोध कराता है। इस **बीज, नमी, वायु और ऊष्मा के साथ को वैज्ञानिक अनुकूल परिस्थिति कहते हैं।** अनुकूल परिस्थिति में ही बीज का अंकुरण होता है। नमी की अनुपस्थिति में सूखा बीज अंकुरित नहीं होता, ऊष्मा की अनुपस्थिति में फ्रिजर में रखा बीज अंकुरित नहीं होता, वायु की अनुपस्थिति में निर्वात में बीज अंकुरित नहीं होता। अंकुरण योग्य बीज, पर्याप्त मात्रा में नमी, वायु और ऊष्मा के साथ होने पर उनके साथ कुछ अतिरिक्त का योग हो जाता है जिससे बीज अंकुरित हो जाते हैं उनमें जीवन परिलक्षित होता है।

न केवल पादप बल्कि जन्तुओं में भी जीवन का प्रारंभ अनुकूल परिस्थिति में ही होता है। इंसानों में भी जीवन का प्रारम्भ मादा के गर्भ धारण से माना जाता है। मादा के गर्भाशय में अनुकूल परिस्थिति में शुक्राणु और अण्डाणु के साथ आने पर भ्रूण का निर्माण होता है और जीवन प्रारम्भ होता है। भ्रूण के विकास के साथ ही उसमें विभिन्न तंत्रों का विकास होता है यथा कंकाल तंत्र, तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, पाचन तंत्र इत्यादि। ये सारे तंत्र स्थूल हैं। मानव शरीर में उपस्थित ये सारे तंत्र जब साथ कार्य करते हैं तो उस स्थूल शरीर के साथ कुछ अतिरिक्त का योग हो जाता है वह कुछ अतिरिक्त अस्थूल होता है जिसे जीवात्मा कहा जाता है। यह जीवात्मा शरीर में तब तक ही निवास करता है जब तक कि सारे स्थूल तंत्र साथ में कार्य करते हैं। मनुष्य तब तक ही जीवित रहता है जब तक उसके शरीर में उपस्थित विभिन्न तंत्र साथ में कार्य करते रहते हैं, यदि इनमें से एक भी तंत्र कार्य करना बंद कर दे तो वह साथ छूट जाता है जो शरीर से जीवात्मा का योग कराता है और वह शरीर जीवात्मा विहीन अर्थात् मृत कहलाता है। किसी एक तंत्र के साथ छोड़ देने पर अन्य तंत्र, साथ की चाह रखते हैं यदि उन्हें साथ उपलब्ध करा दिया जाए तो वे सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं।

आपने अंग प्रत्यारोपण के बारे में अवश्य ही सुना होगा। किसी एक मनुष्य की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसके मृत शरीर से कुछ अंगों को निकाल लिया जाता है और किसी दूसरे रुग्ण शरीर में जिसमें वह अंग विशेष साथ छोड़ रहा होता है उससे प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। दूसरे शरीर में अन्य अंगों का साथ पाकर मृत शरीर से निकाला गया अंग पुनः सक्रिय हो जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों, विभिन्न तंत्रों का साथ कार्य करना ही उसे जीवन प्रदान करता है। साथ छूटने पर उस शरीर का जीवन भी समाप्त हो जाता है।

यह तो आपने भी अनुभव किया होगा कि जब एक परिवार में सदस्य परस्पर मिल जुलकर रहते हैं एक दूसरे का ख्याल रखते हैं, एक दूसरे के सुख–दुःख में साथ खड़े रहते हैं तो उस परिवार का माहौल खुशनुमा रहता है परिवार का हर सदस्य आनंदित रहता है। वहीं दूसरी ओर जिस परिवार में सदस्य निज स्वार्थ देखते हैं एक दूसरे के सुख–दुःख में साथ नहीं आते उस परिवार का माहौल तनावपूर्ण रहता है, परिवार में खटपट होती रहती है, उस परिवार के सदस्य नारकीय जीवन जीते हैं। किसी परिवार में स्वर्गीय या नारकीय माहौल का होना उसके सदस्यों के आपसी संबंध, उनके साथ आने या विलग रहने पर निर्भर करता है। परिवार के सदस्यों के साथ आने पर, उस परिवार के साथ कुछ अतिरिक्त का योग हो जाता है जो उस परिवार में सदस्यों के जीवन को आनंददायक होता है।

आपने यह भी देखा होगा कि जिस समाज में लोग साथ आते हैं परस्पर मिलकर कार्य करते हैं, जिस समाज के लोगों में एक दूसरे के प्रति आदर व स्नेह का भाव रहता है, वह समाज प्रगति करता है, उस समाज द्वारा श्रेष्ठ कार्य संपादित होते हैं। वहीं दूसरी ओर वह समाज जिसमें लोगों में एकजुटता नहीं रहती जिस समाज के लोग साथ नहीं आते वह समाज पिछड़ जाता है। समाज के लोगों के साथ आने पर कुछ अतिरिक्त का योग हो जाता है जो समाज के लोगों में आत्मविश्वास में अभिवृद्धि करता है, उनमें अतिरिक्त ऊर्जा का संचार करता है।

विभिन्न समाज मिलकर एक देश का निर्माण करते हैं। जिस देश में समाज के लोग अलग–अलग बढ़े रहते हैं वह देश पिछड़ा हुआ, कमज़ोर रहता है, वहीं दूसरी ओर जिस देश में लोग

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

गतांक से आगे...

आध्यात्मिक नैतिकता

● डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार

शरीर के पश्चात् मृत्यु जीवन का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है। मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा भय है। जीवन के समस्त भयों के पीछे मृत्यु का भय परिव्याप्त है। इन भयों के परिहारहेतु मनुष्य उचित के साथ अनेक अनुचित तथा अमर्यादित कार्य भी करता है, किन्तु मृत्यु के सन्त्रास से फिर भी विमुक्त नहीं रह पाता। समस्त भौतिक ऐश्वर्यों का अपने चारों ओर वृत्त खड़ा कर लेने के उपरान्त भी मृत्यु का हाथ उसे सहज ही उठा लेता है। इस पर भी आश्चर्य यह है कि यह कब आएगी, इसका हमें तनिक भी भान नहीं है। दुःख के पश्चात् मृत्यु ने ही जीवन विषयक गहन विचार के लिए प्रेरित किया है। यदि मनुष्य मृत्यु के प्रश्न का समाधान कर ले, यदि मृत्यु के रहस्य को मनुष्य सुलझा ले तो वह अपने जीवन को अनेक अपराधों और पापों से बचा ले। भारतीय जीवन दर्शन ने गहन अध्यवसाय के पश्चात् मृत्यु के जिस चरित्र का निश्चय किया है, उसका सार केवल इतना है कि **मृत्यु शरीर तथा आत्मा के संयोग सम्बन्ध का अवसान मात्र है, आत्मा इससे सर्वथा असम्पृक्त एवम् अप्रभावित है।** इस गठबन्धन के समाप्त होने के उपरान्त एक नए शरीर से उसका संयोग हो जाता है। श्री कृष्ण की दृष्टि में आत्मा का यह देहान्तरगमन ठीक वैसा ही है जैसे कोई मनुष्य जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्रों को धारण कर ले। यजुर्वेद ने इस विषय में बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि **मृत्यु शरीर का धर्म है, आत्मा का नहीं।** आत्मा को याजुष मन्त्रों में अविनाशी स्वरूप माना गया है। यजुर्वेद इस शारीरिक मृत्यु को भी श्रेयस्कर नहीं मानता। इसीलिए वहाँ इस मृत्यु से बचने और बचाने की अनेक कामनाएँ तथा प्रार्थनाएँ उपलब्ध हैं। याजुष मन्त्रों ने इस मृत्यु से बचने के लिए मनुष्य को देवयान मार्ग से चलने का सुझाव दिया है–**'हे संहारक मृत्यु ! दूसरे मार्ग का अनुसरण कर जो तेरा देवयान से भिन्न (पितृयाण) मार्ग है। तुझ देखते और सुनते हुए के प्रति मैं कहता हूँ। हमारी सन्ततियों को नष्ट न कर। न ही पुत्रों को नष्ट कर।'** देवयान और पितृयाण क्या है ? देवयान तथा पितृयाण मार्ग 'कठोनिषद्' के श्रेयोमार्ग और प्रेयोमार्ग ही हैं। यदि पितृयाण या प्रेयोमार्ग संग्रह का मार्ग है तो देवयान अथवा श्रेयोमार्ग त्याग का मार्ग है। इस जीवन को आध्यात्मिक जीवन और आगामी जीवन की प्रस्तावना समझकर विषयोपभोग करने का मार्ग है, सहयोग का मार्ग है। पितृयाण में **गृध्रः** भाव का प्राचुर्य है तो देवयान में **त्यक्तेन** का। एक अन्य मन्त्र मार्गों का वर्णन करते हुए कहता है कि मैं पितृजनों के दो मार्ग सुनता हूँ एक ज्ञानी पितरों का और दूसरा साधारण मनुष्यों (कर्मशील) का, इन्हीं दोनों मार्गों से यह सारा चेष्टा युक्त जगत् चल रहा है।

(घ) हम आत्महन्ता न हों

यजुर्वेद ने एक **'आत्महन्ता'** मनुष्य कोटि का वर्णन किया है। यह आत्महन्ता गहन अन्धकार से आच्छादित लोकों को प्राप्त करता है। याजुष श्रुति का कहना है कि जो भी आत्मघाती मनुष्य होते हैं वे मरने के पश्चात् उन लोकों को प्राप्त होते हैं जो लोक (योनियाँ) असुरों को प्रिय होते हैं और घोर अन्धकार से आच्छादित होते हैं। आत्मघातियों की कोटि में वे लोग आते हैं जो आत्मा को पदच्युत कर – स्वामी से सेवक बना उसे अपमानित करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा को दबाकर उसकी भावना के विरुद्ध आचरण करते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती इस मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं कि जो–

> **"लोग आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते तथा करते कुछ और ही हैं वे राक्षस, असुर या पिशाच हैं। इसके विपरीत जो आत्मा, मन, वाणी और कर्म में निष्कपट एक–सा आचरण करते हैं, वे देव कहाते हैं।"**

यजुर्वेद का यह मन्त्र उच्च नैतिक जीवन का प्रस्तावक है। जहाँ क्रिया के व्यक्त और अव्यक्त दोनों उद्देश्य एक ही हों वहाँ छल–कपट के लिए अवकाश नहीं होता। वेद में बड़े भावपूर्ण शब्दों में कहा है कि जो हमारे अन्दर हो वही बाहर हो तथा जो बाहर हो वही अन्दर हो। वस्तुतः छल–कपट मानवीय जीवन पर लगे कलुषित धब्बे हैं। ये विश्वासघात के प्रादुर्भावक भी हैं। विश्वासघात एक ओर जहाँ आत्मघात का मूल है वहीं वह सहयोग, समभाव और समर्पण से युक्त उच्चतर सामाजिक जीवन को व्याघात भी पहुँचाता है। जहाँ तक आत्मभावों के अनुसार आचरण करने की प्रेरणा है, तो यहाँ सतत स्मरणीय है कि जीवात्मा स्वभाव से शुद्ध तथा पवित्र है – ईर्ष्या द्वेषादि दोषों से सर्वथा अलिप्त है, अतः उसकी प्रेरणा भी सदा निर्दोष होगी। धर्मशास्त्र ने **स्वस्य च प्रियमात्मनः** कहकर तदनुसार आचरण करने की प्रेरणा की है। आत्मा जब मन और इन्द्रियों को किसी अच्छे कार्य में लगाता है तो आत्मा में निर्भयता, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है इसके विपरीत जब इन्द्रियाँ किसी बुरे कार्य में प्रवृत्त होने लगती हैं तो आत्मा के भीतर से भय, शंका और लज्जा के भाव उठते हैं। **निश्चय ही सन्देहास्पद विषयों में अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं।** इस प्रकार हम देखते हैं कि आध्यात्मिक जीवनदर्शन हमें दोहरी जीवनशैली और दोहरे मानदण्डों को आत्मघात और विश्वासघात का मार्ग बताकर उससे बचने को प्रेरित करता है।

(ङ) अनृण जीवन

आध्यात्मिक जीवन–दर्शन का एक और वैशिष्ट्य यह है कि वह प्रत्येक मनुष्य के जीवन को ऋणी घोषित करता है कि ऋण से अनृण हुए बिना जानेवाला प्रत्येक मनुष्य अपराधी भी है और पापी भी। इस ऋण का स्वरूप क्या है ? वस्तुतः यह प्रसङ्ग बड़ा रोचक है साथ ही यह भी कि इसे समझ लेने पर जीवन स्वयं के प्रति अत्यन्त जागरूक और समाज के प्रति अत्यन्त उदार हो जाता है। हम जिस माता–पिता के प्रसव हैं, जिस गुरु ने तपश्चर्यापूर्वक हमारे जीवन को प्रतिष्ठा दी है और जिस समाज ने हमारे विकास के प्रत्येक स्तर पर विभिन्न रूपों में सहयोग और सम्बल दिया है उसके प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। न केवल चेतन जगत् की अपितु जड़ जगत् की भी हमारे इस विकास में इतनी ही भागीदारी है। हमारे विकास में इन सभी के द्वारा किया गया योगदान ही हमारे ऊपर पड़ा ऋण है। यद्यपि इस ऋण का वैधानिक स्वरूप कुछ नहीं है तथापि हमारा समस्त जीवन इन्हीं ऋणों का सम्मान करते हुए व्यतीत होता है। हमारी समस्त मर्यादाएँ इन ऋणों से अनुप्राणित हैं। हमारा समस्त लोक व्यवहार इनके प्रति गम्भीर है तथा हमारी आध्यात्मिक चेतना भी इनके प्रति कृतज्ञ है। **इन ऋणों ने दीर्घकाल से मानव समाज की व्यवस्था को सुनिश्चित किया है, समय–समय पर उसे दिशा, बोध दिया है तथा उसका मार्ग प्रशस्त किया है। युगों के परिवर्तन और सत्ता के रक्त–रंजित हस्तान्तरण के मध्य भी ये मर्यादाएँ जस की तस रही हैं। नितान्त विद्वेष पूर्ण वातावरण में भी इन मर्यादाओं ने विरोधी सेनाओं में खड़े अर्जुन से भीष्म और द्रोण को प्रणाम कराया है और भीष्म तथा द्रोण से अर्जुन को आशीर्वाद दिलवाया है।** भले ही कोई–कोई कंस या औरङ्गजेब अपने पिताओं को जेल में डालकर इन पर कुठाराघात करता रहा हो तथापि हजारों श्रवणकुमारों ने अपने सबल कन्धों पर बिठाकर इन मर्यादाओं को इस युग तक पहुँचाया है। इन्हीं ऋणों से अनृण होने के लिए कितने ही वीर मातृभूमि के स्वातन्त्र्य के लिए बलिदान हो गए, कितने ही याजकों ने प्राकृतिक ऋणों एवं देव ऋणों से अनृण होने के लिए यज्ञ का अनुष्ठान किया है।

अपने जीवन पर ऋणों के इस बोध ने हमारी मनोवृत्ति का शोधन कर जीवन में नैतिकता को चिरायु बनाया है। जीवन में नैतिकता के विकास में जितना योगदान इन प्रसङ्गों का है, कदाचित् ही किसी अन्य का हो। **अथर्वश्रुति का कहना है कि हम इस लोक में ऋणमुक्त होवें, दूसरे लोक में ऋणमुक्त हों, हम तीसरे लोक में ऋणमुक्त हों।** जो देवयानी (देवों के पथ से चलनेवाले) और पितृयाणी (पिताओं के पथ से चलनेवाले) लोग हैं हम उनके ऋण से भी मुक्त हों। हम सब पथों पर ऋणमुक्त गमन करें। यजुः, श्रुति ऋणमुक्ति की कामना करती हुई कहती है कि 'दुग्धपान करते हुए जो मैं प्रमुदित हुआ माता को प्रताड़ित करता रहा, वह मैं पितृऋण से अनृण होता हूँ। अब मेरी माता का कष्ट दूर हुआ। हे माता–पिताओ ! तुम कल्याणकारी गुणों से संयुक्त हो, मुझे भी भद्रगुणों से संयुक्त करो। तुम पापों से पृथक् हो, मुझे भी पापों से मुक्त करो।' एक अन्य मन्त्र प्रकारान्तर से इसी भाव को व्यक्त करता है – हे मनुष्य ! तू समस्त लोक को तृप्त कर दे, छिद्र को पूर दे तथा स्थित होकर रह। तुझे इन्द्र, अग्नि और बृहस्पति ने इस योनि में स्थित किया है।

लेखक की पुस्तक "शुक्ल यजुर्वेद में दार्शनिक तत्त्व" से साभार

☞ पृष्ठ 03 का शेष

तत्वज्ञान

करता हुआ यही याचना करता है कि सबको सद्बुद्धि प्राप्त हो। यह तितिक्षा एक ऐसा अनमोल गुण है कि कितने ही साधक केवल तितिक्षा ही के बल से भगवान् के आशीर्वाद के पात्र बन गए। हाँ, यह आवश्यक है कि साधक निन्दा से प्रसन्न चित्त रहे और स्तुति से फूले नहीं, अपितु मन को मर्यादा में रखे और निन्दा करनेवालों या दोषारोपण करनेवालों के लिए यही कहे :

निन्दा हमरी जो करे, मित्र हमारा सोय।
साबुन लेवे गाँठ का, मैल हमारा धोय।।

अपने आत्म–दर्शन के मार्ग पर चलता जाए। स्वामी रामतीर्थ एम.ए. को संसार से उपराम हुआ देखकर किसी ने कह दिया 'पागल हो गया है।' राम कहने लगे :

इन्हीं बिगड़े दिमागों में
भरे अमृत के लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो
कि हम पागल ही अच्छे हैं।।

स्वामी दयानन्द जी ने तो मनुष्य ही उसे बतलाया है जो ऐसे द्वन्द्व सहन कर सके – "चाहे दारुण दुःख भी प्राप्त हो, चाहे प्राण भी चले जाएँ, तो भी अपने मनुष्यपन–रूप धर्म से कभी पृथक् न हो। स्वामी जी ने श्री भर्तृहरि जी का यह श्लोक पढ़कर तितिक्षा धर्म की और भी पुष्टि कर दी है :

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

अर्थात् 'नीतिनिपुण पुरुष चाहे निन्दा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी आए और चाहे भले ही चली जाए, आज ही मरना हो या युगान्तर में हो, पर धीर पुरुष न्याय के मार्ग से एक पद नहीं हिलते।'

जिसमें तितिक्षा नहीं, वह तो पग–पग पर ठोकर खा जाएगा। शरीर यदि कच्चा है; भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी सहन नहीं कर सकता, तो वह न चाहता हुआ भी ऐसे लोगों की दासता में फँसा रहेगा जो उसके शरीर के आराम के लिए हर प्रकार का प्रबन्ध कर सकें। पाप–पुण्य का भी वह ध्यान नहीं रख सकेगा और पतित हो जाएगा। इस मार्ग पर चलनेवाले के लिए तितिक्षु होना अत्यन्त आवश्यक है। ***क्रमशः***

☞ पृष्ठ 04 का शेष

आध्यात्मिक दर्शन ...

के अधीन ही ध्येय का भान होता है, समाधि में यदि ध्यान स्वरूप से शून्य हो जाता है तो ध्येय का मान किस प्रकार हो सकता है, **(स्वरूपपशून्यम् इव) 'इव'** पद दिया है अर्थात् समाधि की अवस्था में ध्यान का सर्वथा अभाव नहीं होता, किन्तु ध्येय से अभिन्न रूप होकर भासने के कारण स्वरूप से शून्य–जैसा हो जाता है, न कि वास्तव में स्वरूप शून्य हो जाता है।

यह योगशास्त्र हमारे पतंजलि ऋषि का अपूर्व आविष्कार है। ईश्वर के सम्बन्ध में हमारे ऋषियों को पहले से ज्ञात था, कि उनके उपनाम सगुण बाह्य सृष्टियों में दौड़ लगाने से वह प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि ब्रह्माण्ड की शक्तियों ने मिलकर जो इस सर्वश्रेष्ठ मानव पिण्ड की उत्पत्ति की है, इसमें उनकी वे सारी शक्तियाँ मौजूद हैं। जो योगाभ्यास द्वारा अपने अन्दर की शक्तियों को जागृत कर लेते हैं, उन्हें उन शक्तियों के प्रकाश विभिन्न रूप में दिखलाई देने लगते हैं और जो उनके **(हारमोन्स)** कुंडलिनी प्रकाश में लिप्त न होकर और आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं, वे ही परमानन्द का प्रकाश प्राप्त करते हैं। उनके लिए मुक्ति का द्वार खुल जाता है। क्योंकि जिसे ***'अमृत'*** धन का भण्डार मिल जाता है, उसके लिए क्षणिक धन अर्थात् भौतिक सुख तुच्छ दिखलाई देने लगता है।

पातंजल शास्त्र के अनुसार, प्राणायाम करने से प्राण में प्रबलशक्ति का उदय होता है, अन्दरुनी ऊर्जा की वृद्धि हो जाती है। कठिन से कठिन रोगों की निवृत्ति होने लगती है। रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम करने के पहले दीर्घश्वसन, भस्त्रिका और कपालभाति कर लेना चाहिए, इससे हृदय की ग्रन्थियाँ शुद्ध और वात, पित्त, कफ की निवृत्ति होती हैं। उसके बाद 'अनुलोम–विलोम' प्राणायाम करना चाहिए यह दीर्घ श्वसन कम से कम 10 से 25 बार अर्थात् दो मिनट, इससे शूगर, कोलोस्ट्रोल, पेसर, आदि प्रायः सभी रोग ठीक होने लगते हैं। इस बाएँ, दाएँ, पुनः दाएँ, बाएँ दीर्घश्वसन से मन की चंचलता में शांति और स्वभाव संस्कार में परिवर्तन होने लगता है, ईश्वर के ध्यान में एकाग्रता आती है। भ्रामरी प्राणायाम करने से मन में शांति, मस्तिष्क में शीतलता और चंचल वृत्ति में एकाग्रता होती है। नासिका से स्वास लेकर, मुख से 'ओ...म्' ध्वनि करते हुए साँस निकलने की क्रिया करने से अपने स्वरूप एवं बुद्धि में शुद्धता आती है। उपरोक्त इन प्राणायामों के करने से निद्रा ठीक से आती है, वजन स्वाभाविक हो जाता है, नेत्रों का चश्मा उतर जाता है। गुरु आदेश के अनुसार करने से शरीर के सूक्ष्म स्नायुमंडल शुद्ध हो जाते हैं और उनके शुद्ध हो जाने से, उनमें एक विशेष प्रकार की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जिससे उनके अनेक प्रकार के असंभव रोग नष्ट होने लगते हैं। रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम करने से, प्राण वश में होने लगता है और प्राण के वश से मन भी स्थिर होने लगता है। परन्तु **ध्यान करने के समय प्राणायाम की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि ध्यान की एकाग्रता बढ़ते रहने से, ध्यान में मन के स्थिर होने से, प्राण स्वयं स्थिर होने लगता है।** जैसे प्रयत्न करने से बालक लिखने–पढ़ने लगता है। उसी प्रकार अभ्यास करते रहने से, मन और प्राण आत्मा की ओर होने लगता है और तब अपने स्वरूपावस्थिति का बोध योगी को स्वयं होने लगता है। अभ्यास करते रहने से इस शरीर के अन्दर जितनी शक्तियाँ हैं जागृत होकर ध्यानी को प्रकाश के रूप में दिखलाई देने लगती हैं, उस समय उसे आत्मसाक्षात्कार तो होता ही है, उसके बाद ध्यान और जम जाने से, उस तपस्वी पर 'परमात्मा की कृपादृष्टि हो जाती है और उसके उस प्रकाश को देखकर वह आनन्द से भर जाता है। जिस प्रकार मधु मुख में भर जाने से वह बोल नहीं सकता, उसके आनन्द लेने में मस्त रहता है, वही अवस्था योगाभ्यासी की ध्यानावस्था में हो जाती है। परन्तु हाँ–आसन, प्राणायाम, ध्यान के बाद 'शवासन' अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य अपने आध्यात्मिक जीवन को सफल बना सकता हैं। ये सब यौगिक क्रियाएँ अपने परिवार संसार में रहकर भी की जा सकती है। इन क्रियाओं को करने लिए, एकान्त स्थान एवं एक घंटे का समय निकालना चाहिए। ध्यान, पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन में बैठकर करना चाहिए और भी क्रियाएँ हैं जो बिना देखे समझ में नहीं आतीं। प्राणायाम के पहले भुजंगासन उत्तान पद्मासन आदि और स्वर को सम करने के लिए खड़े होकर हस्तपदानुष्ठासन कर लेना चाहिए।

मु. पो. मुरारई
जि. वीरभूम्य, पं. बंगाल

☞ पृष्ठ 06 का शेष

सफल जीवन

करके, केवल सार को ही ग्रहण करें।

विवेक – मित्र ! तेरा यह ढंग निश्चय ही आज की सामयिक स्थिति और हर एक की व्यस्तताओं के अनुरूप होने से अधिक उपयोगी है। इस प्रसंग को ऐसे भी कह सकते हैं।

सुधि (साधु) ऐसा चाहिए, जैसे सूप सहाए।
सार–सार गहि लेत है, थोथा देय उड़ाए।।

मानवेन्द्र – हाँ, आज ***'गागर में सागर'*** वाली पद्धति सबके ध्यान में अवश्य रहनी चाहिए, अन्यथा बृहदारण्यक उपनिषद के ऋषि की चेतावनी ही चरितार्थ हो जाती है–

नानुध्यायाद बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्। (4, 4, 21) केवल बहुत पढ़ने सुनने के चस्के में ही न लगा रहे क्योंकि यह तब एक इन्द्रियों का व्यायाम और दिमागी व्यापार ही होकर रह जाता है।

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

☞ पृष्ठ 07 का शेष

साथ की महिमा

साथ मिलकर रहते हैं, उस देश के साथ कुछ अतिरिक्त संयुक्त हो जाता है परिणाम स्वरुप उस देश की कीर्ति चहुँ ओर फैलने लगती है, वह देश प्रगतिपथ पर तेज़ी से आगे बढ़ता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? भारत को ही देख लीजिए, जब तक भारतवासी बँटे हुए थे भारत की गिनती एक शक्तिहीन, गरीब, बेचारा जैसे देशों में होती थी। जबसे भारत के लोग साथ आने लगे, भारत के साथ कुछ अतिरिक्त का योग हो गया, परिणाम विस्मयकारी है। सारे संसाधन, सारी संस्थाएँ चाहे वह कार्यपालिका हो, न्यायपालिका हो या प्रशासन सारा कुछ वही है किन्तु लोगों के साथ आने से देश में एक अतिरिक्त ऊर्जा का संचार हुआ है, देश विकास की नई ऊँचाईयों को छू रहा है। पहले जो देश शक्तिहीन, बेचारा प्रतीत होता था, भारतवासियों के साथ आने से, वही देश शक्तिशाली लगने लगा। आज पूरे विश्व में भारत देश की एक अलग पहचान स्थापित हुई है।

साथ आने पर ही जीवन का प्रारंभ होता है, साथ रहने तक ही जीवन विद्यमान रहता है, साथ होने पर ही परिवार में खुशहाली रहती है, साथ आने पर ही समाज विकसित होता है, साथ आने पर ही देश उन्नति करता है और मजबूत होता है।

डीएवी पब्लिक स्कूल, हुडको भिलाई
जिला–दुर्ग, छत्तीसगढ़–490009

पत्र/कविता

जनसेवा और ईशभक्ति

भद्रजित शांति व शालीनता के साथ राजा का अभिवादन कर राजदरबार से चले गए। भद्रजित परम ईश्वर भक्त तथा धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उन्होंने मंत्री पद से हटाया जाना भगवान की इच्छा माना और अपने नगर लौटकर वह ईश्वर आराधना, " शास्त्राध्ययन तथा जनसेवा में समय लगाने लगे। कुछ ही समय में वह जनता में लोकप्रिय हो गए। लोग उनके सत्संग के लिए लालायित रहते थे। हर समय वह सत्कार्यो में संलग्न रहते थे। एक दिन राजा बालीक की इच्छा हुई कि भद्रजित की कैसी दयनीय हालत है, इसे आंखों से देखा जाए। वह वेश बदलकर नगर में पहुंचे। उन्होंने देखा कि भद्रजित अनेक लोगों की समस्याओं का समाधान कर रहे हैं। राजा को भद्रजित की लोकप्रियता का अनुभव हो गया। भद्रजित ने राजा को पहचान लिया तथा उनसे बोले, 'राजन, यदि आप मुझे पद से नहीं हटाते, तो मुझे लोगों की सेवा तथा भक्ति का सौभाग्य नहीं मिलता। मैं आजन्म आपके प्रति आभारी रहूंगा।' राजा बालीक भद्रजित की विनम्रता तथा धैर्य देखकर हतप्रभ रह गए।

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्वाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

मुक्ति कल्याण-मार्ग से

कुछ लोग पूछते हैं कि 'क्या तुम्हीं स्वर्ग में जाओगे? क्या ये अन्य धर्मवाले करोड़ों मनुष्य सब- के-सब नरक में ठेल दिये जाएँगे?' परन्तु यह भोलेपन का प्रश्न है। मुसलमान और ईसाई तो ऐसा ही कहते हैं कि अन्य सब नरक में जाएँगे। परन्तु नरक और स्वर्ग एक ही जन्म में नहीं मिल जाता। जो मनुष्य जितनी सच्चाई पर होगा उसको उतना ही लाभ होगा और झूठे धर्म की झूठी बातें मानकर मनुष्य कभी मुक्ति नहीं पा सकता, चाहे एक मनुष्य हो चाहे करोड़ों। क्या तुम समझते हो कि करोड़ों मनुष्यों की भीड़ देखकर ईश्वर डर जाएगा और सबको मुक्ति दे देगा? यह बालकपन की बात है!

-गंगाप्रसाद उपाध्याय

उठो युवा तुम उठो ऐसे

उठो युवा तुम उठो ऐसे
चक्रवात में तूफां उठता है जैसे।।

हां, अब कौन युवा, तुम्हारे सिवा ?
रक्षक प्यारे देश का।
तुम चाहो तो तांडव मचे,
देर है तेरे उस वेष का।।
अब तो सब से आस भी टूटी।
लगने लगी 'अब दुनिया भी झूठी।।

कैसी जननी ? कि कैसा लाल?
जो जनकर भी जना क्या लाल ?
जो देश की गरिमा बचा सके।
ध्वंस कर रावण – राज धरा से
एक आदर्श राम राज्य बना सके।।

तुम देश की आन हो।
हिन्दू हो या मुसलमान हो।
किसी मजहब के नहीं,
"तुम मातृभूमि के लाल हो।।"
तुम कालों के भी महाकाल हो
फिर क्यों अन्जान हो ।।

क्या नेता मंत्रियों से परेशान हो ?
ओह ! कहीं विलीन न हो मेरे सपनों का भारत !
हे महारथ! तुझमें है सामर्थ... रोक दे वे ये अनर्थ...।
अगर है मोहब्बत ...तो अपनी यौवन शक्ति जगा दो।
आज अपने युग से भ्रष्टाचार मिटा दो।

शिवराज आनंद
sahityakarshivrajanand@gmail.com

श्रेष्ठ गुण धारण करे तब आर्य बन पाय

उसको अपना जान कर, खोला मन का भेद।
वह तो लाभ उठा रहा, मुझको होता खेद।।

सुख दुःख तो रहते सदा, कभी धूप अर छाँव।
हर तरह के लोग बसे, जीवन मेरा गाँव।।

दिखा दंड कानून का डर पैदा कर जाय।
डरते लोगों से तभी, पैसा रहा कमाय।।

अफसर तन कर बैठ गया, झूठा रोब दिखाय।
उसका गुस्सा देख कर, लोग रहे घबराय।।

मन तेरा रावण बना, मुख तो लगता राम।
कथनी करनी भेद का, गिरगिट जैसा काम।।

कलयुग का रावण अभी पूरा है तैयार।
राम रूप धर कर सदा, बच जाता हर बार।।

पुतला रावण फूँक कर, मन तेरा हर्षाय।
तेरे मन में बैठ कर, वह तुझको भरमाय।।

पहले मन को साफ कर लेना जगह बनाय।
श्रेष्ठ गुण धारण करे, तब आर्य बन पाय।।

फर्ज जो निभाते नहीं, मांग रहे अधिकार।
वह राष्ट्र पर बोझ हैं, उनको है धिक्कार।।

राष्ट्र प्रथम पर सदा, चल कर मंजिल पाय।
अपनी माटी भूलता, भटक सदा वह जाय।।

नरेन्द्र आहूजा विवेक
1004 टॉवर 12, ऑर्किड पेटल्स
सै–49, सैफयर माल के सामने
गुरुग्राम – हरि,

डीएवी पुष्पांजलि (दिल्ली) में चरित्र निर्माण एवं शाखा संचालन शिविर सम्पन्न

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के सानिध्य में आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश के तत्वावधान में 11 दिवसीय चरित्र निर्माण एवं शाखा संचालन प्रशिक्षण शिविर डी.ए.वी पब्लिक स्कूल पुष्पांजलि एंक्लेव, पीतमपुरा नई दिल्ली में सम्पन्न हो गया।

शिविर में दिल्ली के भिन्न–भिन्न भागों से 190 आर्यवीरों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

11 दिवसीय आवसीय शिविर में जहाँ चारित्रिक निर्माण, वैदिक धर्म, अनुशासन, सदाचार व्यवहार, यज्ञ, भजन, प्राणायाम, व्यायाम, आत्मरक्षा, कराटे, लाठी, तलवार, भाला, मलखंभ, आदि की प्रशिक्षण दिया वहीं आर्यवीरों को राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन NDRF, FIRE फाइटर, प्राथमिक चिकित्सा, साइबर क्राइम के प्रति जागरूकता का भी अति विशेष प्रशिक्षण दिया गया।

शिविर में सभी आर्यवीरों का यज्ञोपवीत संस्कार आचार्य आनंद आर्य (वैदिक विद्वान) द्वारा कराया गया। शिविर में डॉ. आचार्य संदीप वेदालंकार जी द्वारा आर्य वीरो को विशेष बौद्धिक दिया गया।

समापन समारोह पर भव्य ध्वजारोहण श्रीमान धर्मपाल आर्य जी (प्रधान, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा) ने किया। परेड निरीक्षण श्रीमान सुरेन्द्र रैली जी (प्रधान, आर्य केंद्रीय सभा दिल्ली) एवं श्री सत्यानन्द आर्य जी (प्रधान, एस. एम. आर्य पब्लिक स्कूल पंजाबी बाग) द्वारा किया गया।

श्रीमान एस.के. शर्मा जी (मंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा) के द्वारा आर्यवीरों को आर्य समाज, वैदिक धर्म, राष्ट्र निर्माण व शाखाओं के वृहद् संचालन के कार्यों को आजीवन करते रहने की पवित्र प्रतिज्ञा ग्रहण करवाई गई। साथ ही आपने प्रतिज्ञा कराई की प्रत्येक आर्य वीर को रविवारीय सत्संग में अवश्य जाना चाहिए।

समापन समारोह पर भव्य व्यायाम प्रदर्शन दिया गया। प्रदर्शन में आर्यवीरों द्वारा सर्वांग सुंदर व्यायाम, नियुदहम, दंड बैठक, तलवार, भाला, आसन, मलखंभ, परेड, आपदा प्रबंधन में सेवा कार्य किस प्रकार आर्य वीरो द्वारा किया जाता है उसका प्रदर्शन, आग लगने पर फायर फाइटर की भूमिका का प्रदर्शन, आदि सुंदर व अनुशासित प्रदर्शकिया गया।

उद्घाटन एवं समापन समारोह में विभिन्न आर्य संस्थाओं एवं आर्य समाज के मुख्य पदाधिकारी सम्मिलित हुए।

शिविर आयोजन का सफल संचालन आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश के संचालक श्रीमान जगवीर आर्य, महामंत्री श्रीमान बृहस्पति आर्य एवं कोषाध्यक्ष श्रीमान सुंदर आर्य जी के नेतृत्व में आयोजित किया जा रहा है।

आर्यसमाज मन्दिर हल्द्वानी में ब्रिगेडियर श्री अशोक कुमार अदलखा जी का सम्मान

आर्यसमाज मन्दिर हल्द्वानी के प्रांगण में साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर श्रद्धापूर्वक यज्ञ किया गया। यज्ञ में मुख्य यजमान के रूप में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के कोषाध्यक्ष ब्रिगेडियर अशोक कुमार अदलखा उपस्थित रहे।

समाज के प्रधान डॉ. विनय विद्यालंकार ने अपने उद्बोधन में उपस्थित सभासदों से मुख्य यजमान का परिचय कराया और कहा कि जीवन के इस पड़ाव पर भी वे अत्यन्त श्रद्धा और निष्ठा से आर्यसमाज की सेवा कर रहे है। आर्यसमाज की ओर से ब्रिगेडियर अदलखा का विशेष सम्मान किया गया।

ब्रिगेडियर श्री अशोक कुमार अदलखा जी द्वारा समारोह में उपस्थित गणमान्य जनों को सर्वजन हिताय का सन्देश देते हुए व आर्य समाज की सामाजिक व नैतिक उत्कृष्टताओं का उल्लेख करते हुए आर्य समाज के साथ जुड़ने के लिए अभिप्रेरित किया गया।

शान्ति पाठ और प्रसाद वितरण से सप्ताहिक सत्संग समाप्त हुआ।

असावरी में योग एवं चरित्र निर्माण संस्कार शिविर सम्पन्न

झोझूकलां। आर्यवीर दल व सर्वहित साधना न्यास की ओर से स्वामी सच्चिदानंद के सानिध्य में गांव असावरी में व्यायाम प्रशिक्षण एवं चरित्र निर्माण संस्कार शिविर का शुक्रवार को समापन किया गया। अंत में सभी आर्यवीरों को प्रशस्तिपत्र एवं साहित्य भेंट कर सम्मानित किया गया।

बतौर मुख्य अतिथि आर्यवीर दल के प्रांत संचालक उमेद शर्मा, विशिष्ट अतिथि पार्षद संजय जांगड़ा ने शिरकत की। व्यायाम शिक्षक नारायण आर्य व रोहित आर्य ने शिविरार्थियों को संगीत के साथ सर्वांगसुंदर व्यायाम, सूर्यनमस्कार, भूमि नमस्कार, नियुद्धम, भाला, तलवार, योगासन, योग पिरामिड, नानचाकू आदि का अभ्यास कराया। नारायण आर्य व रोहित आर्य की कोल्हापुरी तलवार सभी के मन को भा गई।

उमेद शर्मा ने कहा कि आर्यवीरों ने बहुत मन से प्रशिक्षण प्राप्त किया है। अब ये युवा अगली पीढ़ी को संस्कारों से सिंचित करेंगे। आर्यवीर दल इन शिविरों के माध्यम से युवाओं को व्यायाम के साथ संस्कारों और संस्कृति से जोड़ने का कार्य निरंतरता के साथ कर रहा है। धर्मपाल आर्य व धीर शास्त्री ने शिविरार्थियों को आर्यवीर की परिभाषा बताई। इस मौके पर आचार्य प्रवीण योगी, सत्यपाल आर्य, मंजीत श्योराण, अतर सिंह आर्य, योगेश सांगवान, योगेंद्र, रामकुमार आर्य, अजय शास्त्री भांडवा, कुलदीप शास्त्री, यज्ञवीर सहित ग्रामीण मौजूद रहे।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

डी.ए.वी. हरदासपुरा चम्बा में यज्ञशाला का हुआ लोकार्पण

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल चंबा मोहल्ला हरदासपुरा में यज्ञशाला का उद्घाटन वैदिक परंपरानुसार संपन्न हुआ। इस पावन अवसर पर न्यायमूर्ति श्री प्रीतम पाल जी, उपाध्यक्ष, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति, नई दिल्ली एवं अध्यक्ष डी.ए.वी. स्कूल चंबा ने यज्ञशाला का विधिवत उद्घाटन किया।

उद्घाटन समारोह का शुभारंभ अतिथियों के तिलक अभिषेक एवं वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ हुआ। शिलापट्टिका का अनावरण ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपसना मन्त्रों द्वारा किया गया।

इस अवसर पर विद्यालय में आर्य समाज के तत्वावधान में की जाने वाली वार्षिक गतिविधियों की प्रदर्शनी भी

लगाई गई।

वैदिक विधि–विधान से संपन्न यज्ञ में प्रातः कालीन आहुतियों के साथ राष्ट्र, समाज एवं लोक कल्याण हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की गईं।

मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति श्री प्रीतम पाल जी ने अपने आशीर्वचन में कहा कि यज्ञ भारतीय संस्कृति का मूलाधार है, जो न केवल पर्यावरण शुद्धि में सहायक है, अपितु मनोवैज्ञानिक संतुलन, आत्मशुद्धि एवं अनुशासन का प्रेरक भी है। अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा यह विद्यालय दिन दोगुनी रात चौगुनी तरक्की करेगा।

विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री अशोक कुमार गुलेरिया ने मुख्य अतिथि सहित सभी सभासदों का पधारने हेतु धन्यवाद किया।

इस अवसर पर श्री के.के. महाजन, श्री अतुल महाजन, श्री नरेश शर्मा, श्री अमर सिंह, श्रीमान विक्रमादित्य, श्री कमल कुमार, श्रीमती सुमन कुंद्रा तथा स्वामी रमेश चंद्र चंक्राश जी विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

अंत में शांति पाठ के साथ यज्ञशाला उद्घाटन समारोह का समापन हुआ।

आर्य युवा समाज डी.ए.वी. लक्कड़ बाजार शिमला के छात्रों द्वारा पौधारोपण

आर्य युवा समाज डीएवी पब्लिक स्कूल, लक्कड़ बाज़ार शिमला के तत्त्वावधान में विशाल स्तर पर पौधारोपण किया गया। इस असवर पर एक उत्सव का रूप देते हुए विद्यालय में अनेक गतिविधियाँ की गईं।

पर्यावरण की शुद्धि हेतु यज्ञ का में सक्रिय भूमिका निभाने का आह्वान किया।

आर्य युवाओं ने निकटवर्ती वन चील, कैल और देवदार के वृक्षों का रोपण किया।

विद्यार्थियों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करने हेतु पोस्टर मेकिंग, स्लोगन राइटिंग और चित्रकारी

आयोजन किया जिसमें प्रधानाचार्या श्रीमती कामना बेरी मुख्य यजमान की भूमिका निभायी। आर्य युवाओं को संबोधित करते हुए श्रीमती बेरी ने पर्यावरण की सुरक्षा हेतु वृक्षों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए इस महान् यज्ञ प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं।

विद्यार्थियों द्वारा शपथ ली गई कि हर वर्ष एक पौधा लगाएंगे और आने वाले कल को हरा भरा बनाएंगे ताकि प्रकृति का यह सुंदर रूप बरकरार रहे।

डी.ए.वी. कांगू (हि.प्र.) में हर्षोल्लास से मनाया गया स्थापना दिवस

टी.आर.डी.ए.वी पब्लिक स्कूल कांगू में कार्यक्रम की शुरुआत वैदिक हवन से की गई। इसमें बड़ी संख्या में शिक्षकों एवं विद्यालय के अन्य कर्मचारियों ने

भाग लिया। इस अवसर पर विद्यार्थियों द्वारा मंत्र मुग्ध करने वाले भजन प्रस्तुत किए गए।

विद्यालय में कई गतिविधियों का आयोजन किया गया। स्लोगन लेखन, भाषण, पोस्टर मेकिंग। विद्यार्थियों ने समस्त गतिविधियों में बढ़ चढ़कर भाग लिया।

प्रधानाचार्य श्री सुरेश कुमार शर्मा ने बताया कि आज के दिन 1886 में लाहौर में प्रथम डीएवी विद्यालय की स्थापना की गई थी। जिसके प्रथम प्रधानाध्यापक स्वामी हंसराज बने और 25 वर्षों तक बिना एक भी रुपया वेतन लिए डीएवी को अपनी सेवाएं प्रदान की। उन्होंने कहा कि डीएवी विद्यालय पूरे देश में नित नई ऊंचाइयों को छू रहा है। इसके मूल में नैतिकता की गहरी जड़े हैं। इसकी स्थापना महान विभूति पंडित गुरु दत्त विद्यार्थी ,लाला लाजपत राय और स्वामी हंसराज जैसे त्यागी महापुरुषों ने अपना एक एक क्षण निछावर कर दिया।आज पूरे भारत में 919 डीएवी स्कूल कॉलेज और तकनीकी संस्थान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। कार्यक्रम का समापन शांति पाठ के साथ हुआ। इसके पश्चात विद्यालय के प्रांगण से शोभायात्रा निकाली गई।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**